हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada

वर्ष १५, अंक ५८, अप्रैल २०१३ • Year 15, Issue 58, April 2013

इस अंक में

●सम्पादकीय 03
●श्रद्धांजलि 04
●उद्‌गार 05

साक्षात्कार

●रेख मैत्र (सुधा ओम ढींगरा) 09

कहानियाँ

●दो पाटन के बीच आये के .....! :
महेन्द्र दवेसर 'दीपक' 11
●समांतर :
भावना सक्सैना 16
●माई लिटिल ब्रदर इज जस्ट लाइक यू ... :
नीरा त्यागी 19

आलेख

●संस्मरण:
शशि पाधा 21
●आलेख:
सतीश सिंह 48

ग़ज़लें

●सौरभ पाण्डेय 29
●इस्मत ज़ैदी शेफा 29
●दिगम्बर नासवा 29

कविताएँ

●शकुंतला बहादुर 31
●रश्मि प्रभा 32
●पूनम कसलीवाल 32
●सुधा राजे 32
●रेखा मैत्र 33
●पंखुरी सिन्हा 33
●वेद प्रकाश 'वटुक' 33
●कैलाश चन्द्र भटनागर 33
●भगवत शरण श्रीवास्तव 'शरण' 33
●नित्यानंद गायेन 34
●डॉ. रत्ना वर्मा 35

हाइकु

●डॉ.अमिता कौण्डल 36
●कमला निखुर्पा 36
●डॉ.रमाकान्त श्रीवास्तव 36

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

वर्ष : १५, अंक : ५८,
अप्रैल-जून २०१३
मूल्य : ५ डॉलर ($5)

लघुकथाएँ

●मुरलीधर वैष्णव
रब करदा है सो..... 37
●प्रेम गुप्ता 'मानी'
तोहफ़ा 37
●डॉ. शकुन्तला किरण
सुहाग-व्रत 38

लम्बी कहानी

●वरांडे का वह कोना
नरेन्द्र कोहली 39

स्तंभ

●दृष्टिकोण:
डॉ.प्रीत अरोड़ा 24
●भाषान्तर :
डॉ.जगतार, सिमरत गगन
नव्यवेश नवराही 26

इस अंक में

●विश्व के आँचल से :
साधना अग्रवाल 27
●अविस्मरणीय :
आरसी प्रसाद सिंह 35
●अधेड़ उम्र में थामी क़लम:
ऊषा बधवार 49
उषा देव 49
●नव अंकुर:

शीतल 49
तन्वी सिंह 49
●पुस्तक समीक्षा :
डॉ. करुणा शंकर उपाध्याय 51
आनंदकृष्ण 52
●पुस्तकें जो हमें मिलीं: 54
●हम साथ साथ हैं:
हमसफ़र पत्रिकाओं के नये अंक 55
●साहित्यिक समाचार: 57
●डायरी के पृष्ठ:
बबिता श्रीवास्तव 60
●विलोम चित्र काव्यशाला 62
●चित्र काव्यशाला 63

आख़िरी पन्ना

●सुधा ओम ढींगरा 64

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु हमें भेजें । सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि 'हिन्दी चेतना' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन । एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक वर्ग पढ़ने का आनंद प्राप्त कर सकें । इसीलिए हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें । अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें । अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें ।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- हिन्दी चेतना जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी ।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी ।
- रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा ।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं ।
संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी , कैनेडा

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत
पंकज सुबीर, भारत
अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल
पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत
(मुख्य संपादक, पंजाब केसरी पत्र समूह)
कमल किशोर गोयनका, भारत
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
(संपादक, अभिव्यक्ति- अनुभूति)
अफ़रोज़ ताज, अमेरिका
(प्रोफ़ेसर-यूनिवर्सिटी ऑफ़ नॉर्थ कैरोलाईना, चैपल हिल)
निर्मला आदेश, कैनेडा
विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी' डेनमार्क
अनीता शर्मा, शिंघाई, चीन
दीपक 'मशाल', यूके
अमित कुमार सिंह, भारत
अनुपमा सिंह, मस्कट

इस बार होली पर गोरी तेरे ढंग देख,
मटकी मृदंग की उमंग दंग दंग हो,
तन रंग रंग जाए अबीर गुलाल संग,
मन की रंगोली में भी प्रेम वाला रंग हो॥

-अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

: आवरण :
अरविंद नारले, कैनेडा arvind.narale@sympatico.ca
: डिज़ायनिंग :
सनी गोस्वामी, पी सी लैब, सीहोर sameergoswami80@gmail.com
अंदर के चित्र: वन्दना परगनिहा, कला शिक्षिका, केन्द्रीय विद्यालय डोंगरगढ़

सम्पादकीय

भ्रामक तथ्यों के आधार पर लिखे गए लेख

विश्व हिन्दी सचिवालय, मारीशस द्वारा प्रकाशित 2012 'विश्व हिंदी पत्रिका' का विशेष अंक प्राप्त हुआ । मुखपृष्ठ पर अंकित चित्रों को देखकर इतिहास के पुराने अविस्मरणीय पृष्ठ आँखों के सामने घूम गए। इन चित्रों को देखने के बाद अंक की सम्पूर्ण यात्रा करने की जिज्ञासा तीव्र हो गई। सर्व प्रथम मैंने विहंगम दृष्टि से सारे पृष्ठों को देखा और सभी के शीर्षक पढ़ डाले। पूनम जुनेजा का सम्पादकीय पढ़ा, उनके भावों और शब्दों के चयन ने मुझे प्रभावित किया। किन्तु जैसे ही मैंने डॉ.दामोदर खड़से के लेख 'विश्व मंच पर हिन्दी' पृष्ठ (8) पर दृष्टिपात किया तो बेहद निराशा हुई। डॉ. दामोदर खड़से जैसे लेखक ने एक माह की अमेरिका यात्रा करके अधूरी और एक तरफ़ा जानकारी के आधार पर जिन तथ्यों को अपनी लेखनी से प्रस्तुत किया है, वे एक तरह से 'विश्व मंच पर हिन्दी' का दस्तावेज़ है। यह बेहद निराशाजनक और उन लोगों के साथ अन्याय करता हुआ लेख है, जिन्होंने अमेरिका और कैनेडा में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपने जीवन होम कर दिए हैं। ऐसा प्रतीत होता है, अमेरिका में रचे जा रहे साहित्य और साहित्यकारों के बारे में जानने का दामोदर जी ने प्रयास ही नहीं किया तभी तो जो दो-चार साहित्य कर्मी उन्हें मिले, उन्हीं की चर्चा लेख में कर दी गई। अमेरिका एक विशाल देश है। यहाँ की संस्थाओं, हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर लिखने हेतु विस्तृत जानकारी लेने की आवश्यकता थी।

इसी लेख में कैनेडा के विषय में उन्होंने कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। मैं लगभग 40 वर्षों से कैनेडा में हिन्दी के कार्य में रत हूँ, यहाँ पर लगभग 35 वर्षों से प्रो. हरि शंकर आदेश, डॉ. शिवनन्दन सिंह यादव, डॉ . भारतेंदु, श्री नाथ द्विवेदी और सुमन घई आदि अनेकों हिन्दी प्रेमियों ने हिन्दी की अलग -अलग संस्थाओं के रूप में पौधे लगाए; जो आज वृक्ष बन गए हैं, जिनकी चर्चा के बिना लेख अपूर्ण है। लगभग 15 वर्षों से 'हिन्दी चेतना' यहाँ से मुद्रित हो रही है। जिसकी नींव मुझ जैसे अकिंचिन ने डाली थी। इस देश की हिन्दी भाषा से सम्बन्धित हर गतिविधि से भली भाँति परिचित हूँ। डॉ. खड़से ने कैनेडा में हिन्दी भाषा और साहित्य पर जो टिप्पणी 4 पंक्तियों में की है वह कैनेडा के प्रति उनकी अज्ञानता और साथ ही साथ उदासीनता को दर्शाती हैं। यदि वे कनाडा के हिन्दी साहित्य से परिचित नहीं थे, उन्हें कैनेडा के किसी साहित्यकार से सम्पर्क करना चाहिए था। आज कैनेडा उन देशों में से है, जहाँ लगभग 20 से अधिक हिन्दी की संस्थाएँ हैं, यहाँ अनेकों हिन्दी साप्ताहिक पत्र नियमित छपते हैं। इन पत्रों में साहित्य का भी गरिमापूर्ण स्थान है। सरकार की ओर से हिन्दी का शिक्षण होता है । कवि सम्मेलन होते हैं , संस्थाओं के वार्षिक उत्सव पर नाटकों का मंचन होता है। हिन्दी रेडियो के माध्यम से भी लोग जुड़े हैं। टोरंटो विश्वविद्यालय और कैनेडा की हर यूनिवर्सिटी में हिन्दी पढ़ाई जाती है। ऐसे लेख पाठकों को 'विश्व मंच पर हिंदी' का सही स्वरूप नहीं देते और शोधार्थियों को भी अधूरी जानकारी देकर उनका अहित करते हैं। वैश्विक रचनाकार तो पहले ही इस त्रासदी को भोग रहे हैं कि भारत से इतर देशों में लिखे जा रहे साहित्य और हिन्दी की गतिविधियों की अधकचरी जानकारी ही भारत के लेखक पाठकों को परोस रहे हैं। सार्थक लेख लिखने के लिए व्यापक दृष्टिकोण और अध्यवसाय की आवश्कता है, शायद इसीलिए इसे कोई गंम्भीरता से नहीं ले रहा, बस इधर-उधर से जानकारी लेकर ख़ाना पूर्त्ति के लिए लेख लिख दिया जाता है।

तदुपरांत, पृष्ठ 27 पर 'विश्व की हिन्दी पत्रकारिता और पत्रिकाएँ' पर डॉ. कामता कमलेश का लेख पढ़ता हुआ मैं पृष्ठ '28' पर पहुँचा और कैनेडा की पत्रिकाओं के प्रकाशन के बारे में तथा उनके आरंभ की तिथियों की गलत जानकारी देखकर, मुझे अत्यधिक खेद हुआ। लेखक ने बड़े अधिकार के साथ गलत तथ्य दिए हैं ।'हिन्दी संवाद' बंद हो चुका है। डॉ. कामता कमलेश ने लिखा है कि कैनेडा में हिन्दी चेतना का प्रकाशन 1982 से सुधा ओम ढींगरा कर रही हैं, जो असत्य लिखा गया है।1982 में सुधा ओम ढींगरा अमेरिका में आईं और 'हिन्दी चेतना' का प्रकाशन 1998 से प्रारंभ हुआ। सुधा ओम ढींगरा 2006 में इसकी संपादक बनीं। वसुधा का प्रकाशन 2007 के निकट हुआ था, जबकि लेख में 1967 लिखा गया है। बार-बार मुझे एक ही प्रश्न कचोटता है कि लेखक ऐसे भ्रामक तथ्य देकर क्या सिद्ध करने का प्रयास करते हैं? वे ज़रा भी नहीं सोचते कि इसका विश्वांचल पर क्या प्रभाव पड़ता है? ऐसे लेख लिख कर वे अपने ही लेखन की विश्वसनीयता को खो देते हैं। भारत सरकार हिन्दी को विश्व व्यापी बनाने के लिए इतना बड़ा सचिवालय मारीशस में खोल चुकी है, यदि उसका आयोजन और संगठन सुचारु रूप से नहीं किया गया तो हिन्दी प्रेमियों का इस संस्था पर से विश्वास उठ जाएगा। विश्व के उन साहित्यकारों का दिल सबसे अधिक टूटेगा, जो निःस्वार्थ भाव से हिन्दी की अलख जगाए हुए हैं। आज इस सचिवालय को सुधी लेखक, समर्पित साहित्यकार और निष्पक्ष आलोचकों की आवश्यकता है। मुझे कैनेडा के इस अपमान से गहरी पीड़ा हुई है। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में 'विश्व हिन्दी पत्रिका' का सम्पादन कुशलता पूर्वक किया जायेगा।

आपका,

श्याम त्रिपाठी

श्रद्धांजलि

हिन्दी चेतना के सबसे पुराने सहयोगी दिवंगत प्रो. ओंकार प्रसाद द्विवेदी को पूरे परिवार की ओर से अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि

'जोगी था सो उठ गया बाक़ी रही भभूत' : श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी

यह प्राकृतिक क्रम है - पुष्प का खिलना, मुरझाना, सूखना और पंखुड़ियों का बिखरकर धरती पर मिल जाना और यही कुछ व्यक्ति के साथ घटता है - 'जायन्ते जीवन्तिप्रयन्ति ' शरीर की यही परिणित है। किन्तु फूल की सुवास वातावरण में तैरती रहती है और भाई साहब के महाप्रयाण के पश्चात भी कौंधती रहती हैं, मानस पटल में उनकी मधुर तथा सरल स्मृतियाँ । यद्यपि मुझसे अढ़ाई वर्ष उम्र में बड़े थे किन्तु ज्ञान, चिन्तन और विद्वत्ता में योजनों का फासला था। वे मेरे अग्रज ही नहीं मार्गदर्शक, प्रेरणा स्त्रोत तथा सुहृदयमित्र थे ।

उनका जन्म हमारे खानदानी ग्राम निबाब्र (बिन्दकी) , फतेहपुर , उत्तर प्रदेश में एक सम्पन्न कृषक परिवार में हुआ था। पिता श्री जगन्नाथप्रसाद द्विवेदी मध्य प्रदेश में वन विभाग में रेंजर थे। इसलिए बचपन में हम लोग उन्हीं के साथ सरकारी बंगले में रहते थे । किन्तु तबादले के कारण पढ़ाई में अड़चने आने लगीं थीं। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा कैकेया, मंडला में पूरी की थी।

बाबा जी (पितामह)की बलबती इच्छा थी कि बच्चे उनके समीप रहकर पढ़ें। फलस्वरूप 1946 में बिन्दकी आकर रहने लगे। नेहरू इंटर कालेज, बिन्दकी से हाई स्कूल प्रथम श्रेणी में और कान्यकुब्ज महाविद्यालय,कानपुर से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की।

1957 में बी.एस.सी करने के बाद म.प्र. के शासकीय हाई स्कूल में विज्ञान-शिक्षक रहे किन्तु अग्रिम शिक्षा के लिए वह नौकरी त्याग कर बिलासपुर आ गये ,जहाँ छोटे भाई बहनें रहकर पढ़ते थे। जीवन में चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार किया और कभी विपरीत परिस्थितियों के सामने घुटने नहीं टेके। विवाह इस मध्य हो गया था, उस दायित्व से भी परिचित थे। साथ ही पिता जी को भी आर्थिक सहयोग देने की भावना से स्थानीय विद्यालय में शिक्षकीय कार्य करना शुरू किया। साथ ही साथ महाविद्यालय में एम् . ए . राजनीत विज्ञान में प्रवेश किया। उन्हें कुछ ऐसा लग रहा था कि संभावनाएँ दस्तक दे रही हैं । शायद इसी विश्वास के साथ पढ़ाई शरू की। एम्.ए में मेरिट लिस्ट में थे। फलस्वरूप उसी एस.बी.आर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर में व्याख्याता पद में कार्य करना प्रारम्भ किया।

1963 में स्कालरशिप मिलने पर कार्ल्टे वि.वि. पढ़ने के लिए चले आये। क्वींस से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और ओंटेरियो के गल्फ वि.वि. 1967 से सहायक प्राध्यापक के रूप में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। अध्ययन तथा अध्यापन उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया। लेखन से उनका निकट का नाता था इसी लिए पूरी प्रतिबद्धता, लग्न और समर्पण की गहनता के साथ उससे अंतिम क्षणों तक जुड़े रहे। जीवन में अनुशासन तथा योजनाबद्ध कार्यप्रणाली उनकी विशिष्टता थी।

1983 में 'कैनेडियन साहित्य परिषद' की स्थापना में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई।1984 में 'हिन्दी सम्वाद ' नामक पत्रिका का प्रकाशन और वितरण किया। यह अमेरिका की प्रथम हिन्दी पत्रिका थी जो 2000 तक चलती रही । आपने अनेकों अन्तर्राष्ट्रीय, हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन किया। आपको हिन्दी भाषा के प्रति अगाध प्रेम था।

धर्मों में पर्यावरण की परिकल्पना के आधार पर शोध निबन्धों का प्रथम संकलन प्रकाशित करवाया और पृथ्वी सूक्त पर व्याख्या की।1985 में अपने कस्बे बिन्दकी में माध्यमिक पाठशाला की स्थापना की, जो उपेक्षित और निर्धन परिवार के बच्चों के लिए बहुत सहायक है। 2008 में ऐतिहासिक नगर बिठूर, कानपुर में नेत्र चिकित्सालय की स्थापना की।

अंतिम क्षणों में असह्य पीड़ा में भी पूरे साहस तथा धैर्य से एक आशावादी उदाहरण का परिचय दिया ।

मैं 27 जनवरी को उनके पास था, मैंने कहा - 'भैया हिम्मत न हारिये' तो उन्होंने बहुत ही धीरे स्वर में कहा 'बिसारिये न राम को' वही उनका अंतिम संदेश था ।

*

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें :
http://kathachakra.blogspot.com

हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
पर जाकर

उद्गार

साधुवाद, दशकों से भारत वंशियों में 'हिन्दी चेतना' जगाने के लिए । बल्कि यह तो हमें भी प्रेरणा देती है कि हम भी बातें न करके सच में मातृभाषा की असली सेवा कैसे करें ? सच में, निस्वार्थ भाव से तन, मन, धन सब का अर्पण यही तो है। आप से जुड़ कर मुझे बेहद खुशी होगी। आप सब हिन्दी मनीषियों को मेरे जैसे एक हिन्दी भक्त का शत -शत प्रणाम। अगले अंक की प्रतीक्षा में ....।

-अरविन्द कुमार साहू (ऊंचाहार, भारत)

*

'हिन्दी चेतना' जनवरी २०१३ के अंक में रीता कश्यप की कहानी 'सौदागर' अत्यंत शक्तिशाली है। इस कहानी में कुशल लेखिका ने नारीमात्र के मनोभाव और उसके उतार-चढ़ाव को, उसकी ममता, कर्त्तव्य परायणता और पीड़ा को बखूबी से चित्रित किया है। इस छोटी सी बानगी से इनकी लिखी अन्य रचनाएँ पढ़ने की उत्सुकता जाग उठी है।

बधाई सहित

-मीरा गोयल(नार्थ कैरोलाईना, अमेरिका)

*

'हिन्दी चेतना' का जनवरी अंक मिला और कवर पृष्ठ पर छपे सुनहरे चित्र को देखकर मन प्रसन्नता से भर उठा। अरविन्द नारले जी के चित्र और कला पत्रिका के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं, क्योंकि उनको देखने मात्र से शेष पत्रिका को खोल कर पढ़ने का मन करता है। कहावत है कि ''एक चित्र हज़ार शब्दों के तुल्य होता है।'' श्याम जी को पुन: बधाई हो कि उनके सतत परिश्रम से 'हिन्दी चेतना' उत्तम स्तर की पत्रिका बन चुकी है । कनाडा में जहाँ की भाषा अंग्रेज़ी है और यहाँ के रहने वाले भारतीय प्रांतीय भाषा बोलते हैं और अपने विशेष वर्ग से जुड़े हैं, उस सब अंतराल के बीच स्तर की हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन निजी पूर्ण श्रम और समर्पण का प्रतीक है । आपकी सारी टीम को बहुत बहुत बधाई ।

-प्रदीप कुमार (भारत)

*

आपके द्वारा प्रेषित 'हिन्दी चेतना' का अक्तूबर-दिसम्बर 2012 लघुकथा विशेषांक हस्तगत हुआ। पाकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। मैंने आपको दो पत्र लिखे थे पर आपका उत्तर न पाकर मुझे बड़ी निराशा हुई थी।'हिन्दी चेतना' एक अत्युतम पत्रिका है। विदेशों में छप रही पत्रिकाओं में इसको सर्वोत्तम न कहकर कहूँगा इसका स्थान ऊँचा है और यह जो लघुकथा विशेषांक छपा है यह तो सर्वोत्तम है, देश-विदेश के इतने सारे पुराने-नये कथाकारों की चयनित लघुकथाओं को साथ एक पत्रिका में प्रकाशित करना बहुत परिश्रम का काम है। इस दिशा में कहूँगा एक शोधपूर्ण कार्य हुआ है और इस प्रकाशन के लिए जितनी भी दाद दी जाय कम ही होगी। लघुकथाएँ प्रभावशाली और रोचक हैं। प्रांजल और साहित्यिक भाषा में लिखी गयी लघुकथाएँ पठनीय बन पड़ी हैं। हमने सम्वत 2004 में हिन्दी लेखक संघ मॉरीशस की ओर से एक लघुकथा संग्रह प्रकाशित किया था, जिसमें देश के 18 लघुकथाकारों की 52 लघुकथाएँ संकलित हुई थीं। रचनाओं को इकट्ठे करने, सम्पादन करने में काफी समय लगा था और बहुत परिश्रम करना पड़ा था। 'हिन्दी चेतना' लघुकथा विशेषांक में तो अनेक देशों के रचनाकारों की रचनाएँ जिनमें कुछ कथाएँ अनूदित कर छापने में कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, मैं अनुभव कर पा रहा हूँ, क्योंकि मैंने मॉरीशस में प्रकाशित लघुकथा-संग्रह का सम्पादन किया था। यदि मुझे पता चलता कि 'हिन्दी चेतना' का लघुकथा-विशेषांक छपने जा रहा है, तो ज़रूर मैं अपनी लघुकथा भेजता, जो मॉरीशस की लघुकथा का प्रतिनिधित्व करती और हाँ, लघुकथाओं पर जो परिचर्चा पृष्ठ 62-68 पर छपी है, उसे पढ़कर तो लघुकथा लेखन के शिल्प, तत्व, कला, का मार्ग दर्शन मिल जाता है। परिचर्चा संयोजन रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', सुकेश साहनी की सोच को दाद और परिश्रम में अपने विचारों को सटीक अभिव्यक्ति करने वाले सुभाष नीरव, डॉ. श्याम सुंदर दीप्ति, डॉ. सतीश दुबे, डॉ. सतीश राज पुष्करणा, श्री भगीरथ तथा श्याम सुंदर अग्रवाल को धन्यवाद ।

-इंद्रदेव भोला इन्द्रनाथ
प्रधान सम्पादक 'बाल सखा'(मॉरीशस)

*

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' का जनवरी -मार्च २०१३ अंक पढ़ने को मिला, जिसमें श्याम त्रिपाठी जी ने अपने सम्पादकीय में इस पत्रिका के लिए जो संघर्ष और चुनौतियों से साक्षात्कार किया है, वह बहुत ही प्रेरक और उनके जुझारू व्यक्तित्व को रेखांकित करते हैं । राजेन्द्र यादव के साथ लालित्य ललित का साक्षात्कार में राजेंद्र यादव ने कई मुद्दों पर अपना अनुभव बाँटते हुए प्रवासी लेखन, सत्यम शिवम् सुन्दरम की प्रमाणिक अर्थवत्ता, हिन्दी की नई पीढ़ी के प्रति चिंता और अंग्रेज़ी का बाज़ार पर कब्ज़ा का यथार्थ और रोचक आकलन दिया है । कहानियाँ सभी अच्छी हैं फिर भी 'गाँठ' कोई विशेष असर नहीं डालती। ग़ज़लें, हायकु, नवगीत और सभी कविताएँ मन को बाँधती हैं । तीनों लघुकथाएँ हमें सोचने पर मजबूर करती हैं। निकोलस पोलजेक का हिन्दी पढ़ने के पीछे का नज़रिया उसे ग्लोबल बनाती है । सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'फ़न्दा क्यों' पर विजय शर्मा की समीक्षा समीचीन है। साहित्यिक समाचार बहुत ज्ञानवर्धक एवं समसामयिक गतिविधियों के लिए मार्गदर्शी बन पड़े हैं ।

'आखिरी पन्ना' सुधा जी का हिन्दी प्रेम के साथ -साथ भारत के प्रति लगाव का जो रूप दर्शाता है, उस पर हमें गर्व है। कोई भी अपनी नींव /जड़ को काटकर पुष्पित और पल्लवित नहीं हो सकता। सब मिला जुलाकर लब्बो लुबाब ये है कि यह संस्करण अपने आप में बेहद रोचक, प्रेरक, आकर्षक एवं ज्ञानवर्धक बन गया है। इस वैश्विक 'हिन्दी चेतना' पत्रिका के प्रकाशन के लिए आप सभी सुधीजनों को सादर हार्दिक आभार । वन्देमातरम् .....

-डॉ. मनोज कुमार सिंह, मैनपुरी, भारत

*

अक्तूबर का लघुकथा विशेषांक अब पूरा पढ़ पाया। पुराने और नए रचनाकारों की श्रेष्ठ लघुकथाओं से सुसज्जित यह अंक संग्रहणीय है। संग्रह कर भी लिया। सारिका के दिनों से गुज़रने जैसा सुखद अनुभव भी मिला। हार्दिक बधाई और धन्यवाद।

-शशिकांत गीते (भारत)

*

'हिन्दी चेतना' एक ऐसी पत्रिका है, जिसको जब भी पढ़ती हूँ, सोचती हूँ, अब इससे अच्छा क्या? पर फिर कुछ नया और मन को लुभाने वाला एक और अंक आ जाता है। लघुकथा विशेषांक भी कुछ ऐसा ही है कि दुनिया के कोने-कोने से चुन कर लघुकथाओं को हिन्दी चेतना के आकाश में तारों सा जड़ दिया है। इस कार्य के पीछे श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु ' जी और श्री सुकेश साहनी जी की मेहनत दिखाई देती है। इस अंक को जब पढ़ना प्रारम्भ किया तो लगा बस एक सपनों की दुनिया है और डूबते जाना है। कहीं शब्दों का गुलदस्ता सजा था तो कहीं भावों की गंगा बह रही थी। किसी कहानी का अंत सोचने पर मजबूर करता था तो किसी का अंत झकझोर देता था; जिस जिस ने भी ये अंक पढ़ा होगा वो शायद मेरी बात से सहमत होंगे.....कौन-कौन सी लघुकथा अच्छी है, ये कह पाना तो बहुत ही कठिन है, पहले सोचा था कि आसानी से चुनाव हो जायेगा और पसन्द आई लघुकथाओं के बारे में अपने विचार लिख सकेंगे। लेकिन जब पत्रिका को पढ़ा तो जाना कि इन सभी उत्तम लघुकथाओं में से किसी कुछ को चुनना बहुत ही कठिन है। श्री हिमांशु जी ने और श्री सुकेश जी ने बहुत ही गंभीरता और सावधानी से लघुकथाओं का चुनाव किया है। दोनों कोटि-कोटि बधाई के पात्र हैं, क्योंकि इन्हीं की मेहनत के कारण ये अनमोल खजाना हमारे हाथों में हैं। ये अंक संभाल कर रखने योग्य है। हिन्दी चेतना का ऑन लाइन लिंक हमेशा पहले मिल जाता है पर एक बात जो मैने हमेशा महसूस की है वो ये कि जब पत्रिका हाथों में आती है तब उसको पढ़ना और पत्रिका को ऑन लाइन पढ़ना दोनों में बहुत ही अन्तर होता है, पत्रिका को रूबरू पढ़ने पर उसमें लिखा एक-एक अक्षर बोलता हुआ मालूम होता है और उसको महसूस भी किया जा सकता है। ये पत्रिका हर बार कुछ नए परिधान धारण करके हम सभी के सम्मुख आ जाती है। एक नया मुस्कुराता अंक हम तक पहुँच जाता है। हिन्दी चेतना को इतनी ऊँचाई पर पहुँचाने के लिए श्याम त्रिपाठी जी, डॉ. सुधा ओम ढींगरा जी और पत्रिका की पूरी टीम बधाई की पात्र हैं।

-रचना श्रीवास्तव (टेक्सास, अमेरिका)

*

इस वर्ष का 'हिन्दी चेतना' का प्रथम अंक मिला । सदा की भांति बहुत सुंदर अंक आपने प्रकाशित किया है। आप, डॉ. सुधा ओम ढींगरा जी, डॉ. नारले जी और अन्य सभी लोग जो हिन्दी चेतना से जुड़े हैं, एक महान यज्ञ कर रहे हैं। आपका सम्पादकीय पढ़ने से (और वैसे भी अपने अनुभव से) पता चलता है कि शुभ कार्य में कितना प्रयत्न आप सब कर रहे हैं । बाधाएँ उत्पन्न करने वाले भी होते हैं ; कौन से यज्ञ में वाधाएँ नहीं डाली गईं। अत: अपना कार्य करना ही है ।

-शिवनन्दन सिंह यादव (कैनेडा)

*

सदा की भाँति 'हिन्दी चेतना' का जनवरी 2013 अंक भी स्तरीय तथा मनभावन लगा। सभी आलेख, कहानियाँ, हाइकू, कविताएँ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कहानी 'सौदागर' पुरुष की धनलोलुपता एवं माँ की ममता की मनोवैज्ञानिक तथा मार्मिक कथा है । वहीं 'चेंज यानी बदलाव' नारी की अस्मिता और आत्मगौरव को दर्शाती है। विकेश निझावन की 'गाँठ' पति के अत्याचार और पत्नी के दु:खद अंत की अत्यन्त करुण कहानी है । तीनों ही मन पर गहरी छाप छोड़ती हैं । डॉ. सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'फन्दा क्यों' यथार्थ परक है, जिसकी समीक्षा अच्छी लगी। शशि पाधा का संस्मरण 'बलिदान' प्रेरणाप्रद और मार्मिक है। राजेन्द्र यादव का साक्षात्कार, हरीश नवल का व्यंग्य और 'समकालीन साहित्य में स्त्री विमर्श' भरपूर जानकारी देते हैं। साहित्यकारों के रोचक संस्मरण गुदगुदा कर आनन्द से भर गए। कुल मिलाकर पत्रिका की सारी सामग्री के वैदुष्यपूर्ण चयन एवं कुशल सम्पादन के लिये आपको हार्दिक बधाई !!

शुभकामनाओं सहित,

-शकुन्तला बहादुर (कैलिफोर्निया)

*

यह मेरा सौभाग्य ही है कि जैसे ही स्वदेश छोड़ कर विदेशी धरती पर पाँव रखा, सुधा जी के माध्यम से वैश्विक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' से जुड़ गई । तब से लेकर आज तक मैंने इस पत्रिका के उत्तरोत्तर विकास तथा सफलता को देखा है । सामग्री वैविध्य के कारण आज यह पत्रिका विश्व की हिन्दी पत्रिकाओं में अग्रणी है । इसके लिए श्री त्रिपाठी जी, सुधा जी तथा पूरी टीम बधाई के पात्र हैं ।

'हिन्दी चेतना' का अक्टूबर -दिसंबर का लघुकथा विशेषांक हाथ में आते ही मैं जीवन से जुड़ी हुई छोटी-छोटी कहानियों के संसार में पहुँच गई। तब ऐसा लगा कि यह विशेषांक एक पुस्तक के रूप में भी प्रकशित होना चाहिए । हिमांशु जी तथा सुकेश जी स्वयं प्रसिद्ध लघुकथाकार तो हैं ही किन्तु, इन्होंने इस अंक में विभिन्न विषयों पर आधारित लघुकथाओं का चयन करके पाठकों को भरपूर आनन्दित किया है । इस अंक में देश-विदेश के लेखकों की रचनाओं के अनुवाद के साथ भारत के वरिष्ठ रचनाकारों की लघु कथाओं को तो स्थान दिया ही गया है साथ ही नवोदित कथाकारों की रचनाओं का समावेश करके इसे और समृद्ध तथा सुरुचिपूर्ण रूप दिया है । इसमें प्रस्तुत परिचर्चा ने तो लघुकथा से जुड़े प्रश्नों पर प्रकाश डाला ही है साथ में हिमांशु जी के आलेख 'लघुकथा की सृजनात्मक प्रक्रिया' के द्वारा इस विधा में लिखने का प्रयत्न करने वालों को इसके आकार, स्वरूप और कथ्य की बुनावट के शिल्प को बहुत सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है । इस अंक को पढ़कर पाठक और लेखक दोनों ही अवश्य लाभान्वित होंगे । ऐसे कुशल एवं सुरुचिपूर्ण सम्पादन के लिए सम्पादक द्वय बधाई के पात्र हैं । सुधा जी का 'आखिरी पन्ना' हर बार एक पाठकों के साथ एक नये संवाद के साथ आता है, जिसमें हिन्दी भाषा के प्रति कुछ विशेष योगदान करने की प्रेरणा होती है । आपने जो कारवां बनाया है, उसके साथ कई हमराही जुड़े है और जुड़ जायेंगे ।

बस इन्हीं शुभकामनाओं सहित।

-शशि पाधा (वर्जिनिया, अमेरिका)

*

जिस काल -खंड में हिन्दी भाषा अपनी ही भूमि पर वह सम्मान हासिल नहीं कर पा रही है, जिसकी वह हक़दार है, उस दौर में पर-देस में रहकर आप जो सेवा कर रहें हैं वो इस देश के साहित्यकारों के लिए भी एक आदर्श है। 'हिन्दी चेतना' की सामग्री सदैव स्तरीय होती है और देश- विदेश के साहित्यकारों को एक साथ पढ़ना अपने आप में एक सुखद अनुभूति है। आपके इस प्रयास को मेरा नमन।

-अशोक जमनानी (भारत)

*

'हिन्दी चेतना' का जनवरी 2013 अंक पाकर मन प्रफुल्लित हुआ। सदा की तरह स्तरीय सामग्री और सुरुचिपूर्ण सज्जा के साथ विभिन्न विषयों पर उपयोगी रचनाएँ पढ़ने को मिलीं। श्री राजेन्द्र यादव से साक्षात्कार उत्सुकता से पढ़ा। 'सौदागर' कहानी अंतर को झकझोर गई। स्त्री की कोख भी पुरुष के लिये विक्रय की वस्तु बन गई! याद आ गई अपना स्वार्थ सिद्धि की पुरानी परंपरा--ययाति जैसे यशस्वी राजा (जिसने अपनी पुत्री माधवी की कोख उधार दे दी। ऋषि विश्वामित्र का गालव जैसा निष्ठावान शिष्य, जिसने उसे बेच-बेच कर राजाओं से श्यामकर्ण अश्व गुरु दक्षिणा हेतु कमा लिये) जो कसर रह गई, वह गुरु ने स्वयं भोग कर पूरी कर ली। उऋण हो गये सब और इन व्यापारों से श्लथ माधवी फिर से अपने पिता का धन-कन्या दान का पुण्य कमाने का साधन। कैसी भयावह यह मौन चीख, और कितनी तीखी! 'चेंज यानी बदलाव' की समर्थ नारी, ओढ़े हुए पुराने गँधाते कंबल से मुक्ति पाकर अपना व्यक्तित्व पा सकी। उसके संस्कारों ने उसे, दुर्बल बना दिया था उनसे मुक्ति की कथ -स्वस्थ एवं सार्थत संदेश देती हुई। मियाँ मिट्ठू प्रकरण भी मज़ेदार। शशि पाधा जी की रचना बलिदान, ये मूक पशु संवेदना, निष्ठा और प्रेम निस्वार्थ देने में इंसान से किसी प्रकार कम नहीं। 'फ़न्दा क्यों' के बहाने सुधा जी के कृतित्व का विवेचन ऐसा जैसे चौराहे पर खड़े हो कर खुली आँखों परीक्षण कि कहाँ क्या हो रहा है-- बहुत प्रभावशाली और अंतर्निहित वास्तविकताओं को सामने ला कर उजागर कर देनेवाला। काव्य की विधाओं में भी अंक पीछे नहीं है। विभिन्न पड़ावों को पार करती 15 वर्षों की यह यात्रा विशेष रूप से हिन्दी के आज के विषम प्रहरों में कठिन रही होगी, यह सच है पर उसकी उपलब्धियाँ कम नहीं, जिसके लिये आप का पूरा मंडल बधाई का पात्र है!

-प्रतिभा सक्सेना (कैलिफोर्निया)

*

'हिन्दी चेतना' का जनवरी -मार्च अंक देखा। अंक की सामग्री और साज -सज्जा दोनों ही बेहतरीन हैं। वाकई आपने और श्याम जी ने काफी मेहनत की है। आप लोग सुदूर विदेश में रहकर, सीमित संसाधनों के बावजूद, इतना अच्छा काम कर रहे हैं कि भारत के कुछ स्वनामधन्य पत्रिका संपादक आपसे ईर्ष्या कर सकते हैं। खैर ..... अब बात रचनाओं की ...रचनाएँ सभी अच्छी हैं पर विशेष रूप से नरेन्द्र कोहली जी की कहानी 'वरांडे का वह कोना' ने बहुत प्रभावित किया। इसका अगला भाग पढ़ने के लिए अगले अंक का इंतज़ार करना ही पड़ेगा। लालित्य ललित की राजेंद्र यादव जी से बातचीत अंक का सबसे बड़ा आकर्षण है। ललित ने बड़ी बेबाकी से साक्षात्कार किया है। विशेषकर यादव जी को काला नमक और काली मिर्च लेने का जब वह सुझाव देते हैं तो मज़ा आ जाता है। इसके अलावा डॉ.स्वाति तिवारी,विकेश निझावन और रीता कश्यप की कहानियाँ और ज्योत्स्ना शर्मा के हायकु भी प्रभावित करते हैं। हरीश नवल का व्यंग्य सोचने पर विवश करता है। सुधा जी ने 'आख़िरी पन्ना' में प्रवासी भारतीयों के दर्द को बखूबी रेखांकित किया है।

-सुभाष चन्दर (भारत)

*

'हिन्दी चेतना' के हर अंक को देखना नए आस्वादन से भर जाना होता है। आपकी साहित्यिक मेहनत साफ-साफ़ दीखती है। आप लोगों के श्रम का जितना वंदन किया जाये, कम है। आपके माध्यम से हम लोगों को जो साहित्य-सुधा मिल रही है, उसके लिए आपको धन्यवाद। आभार।

-गिरीश पंकज, संपादक, सद्भावना दर्पण

*

'हिन्दी चेतना' का जनवरी-मार्च 2013 अंक पढ़ा। साक्षात्कार में... राजेन्द्र यादव जी का यह कथन कि हिन्दी में कितने लिखते हैं मुझे डाटा मालूम नहीं, उनके ज्ञान (या अज्ञान) को दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है। यादव जी के विचार ..सिर्फ स्वतंत्र लिखने के लिए बिना कोई नौकरी के भी उचित नहीं लगे..... प्राय: महान रचनाएँ कालजयी रचनाएँ सिर्फ साहित्यकारी-कर्म से परे अन्य -क्षेत्र के व अपनी नौकरी व अन्य कार्य करने वाले लोगों द्वारा ही की गयी हैं.....चंद बरदाई, कालिदास, मुंशी प्रेम चंद, जयशंकर प्रसाद आदि तमाम ऐसे उदहारण हैं.... नरेन्द्र कोहली जी पर तो क्या कहा जा सकता है सूरज को दीपक दिखाना है, आनंद आ गया....रीता कश्यप की कथा 'सौदागर' सामयिक व सटीक लगी जो आजकल की पीढ़ी की अति-महत्त्वाकांक्षा -पूर्ति हेतु किये गए समझौतों की मजबूरी को दर्शाती है। अन्य रचनाएँ भी हर बार की भांति स्तरीय सामग्री से भरपूर रही। सम्पादकीय में वर्णित साहित्यकार जी के मंतव्य के बारे में पढ़ कर दु:ख हुआ। हिन्दी में साहित्यिक ठेकेदारी निश्चय ही हिन्दी का अहित ही कर रही है .....परन्तु ऐसे लोग हर संस्थान व संस्था में होते ही हैं ..... उन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हो इस आशा में ...

-डॉ. श्याम गुप्त (बेंगलोर, भारत)

*

विदेशी धरती पर हिन्दी भाषा और साहित्य की अलख जलाने और जीवित रखने के लिए बहुत -बहुत बधाई और शुभकामनाएँ।

-शैलेन्द्र सागर, कथाक्रम

*

'हिन्दी चेतना' का पूरा अंक देखा पढ़ा, नि:संदेह यह एक संपूर्ण वैश्विक पत्रिका है। आनन्द आ गया। विकेश निझावन, रीता कश्यप और स्वाति जी की कहानियाँ, नवल जी का व्यंग्य और भाई ललित का लिया आ.राजेन्द्र यादव जी का इन्टरव्यू सभी बहुत अच्छे हैं। आपकी कहानी पर सार्थक चर्चा और जगदीश किंजल्क के संस्मरण रोचक हैं । लघुकथाएँ ठीक हैं, अर्से बाद अंकुश्री को पढ़ा। ग़ज़लों पर और ध्यान दें, गौतम राजरिशी के कई शेर अच्छे हैं। नवगीत अच्छे हैं और नरेन्द्र कोहली जी को पढ़ना सुखद अनुभव। कुल मिलाकर बहुत अच्छा लगा। सुखद आश्चर्य हुआ, आप लोग कितना काम कर रहे हैं ।

-मनोज अबोध (बिजनौर, भारत)

*

मैंने 'हिन्दी चेतना' का जनवरी 2013 अंक पढ़ा। मुझे कैनेडा आए पंद्रह साल हो चुके हैं और आज पहली बार इतना उम्दा साहित्य पढ़ने को मिला है। मन बाग़-बाग़ हो गया। 'हिन्दी' भाषा भारत का वो स्तंभ है, जो देश की शान, परंपरा और सभ्यता को विश्व के मंच पर बखूबी प्रस्तुत करता है, परंतु यहाँ कैनेडा में उसका कार्यभार 'हिन्दी-चेतना' ने सम्भाला हुआ है, इसका आभास नहीं था। अंक पढ़कर एक निश्चिंतता मन में है कि हमारी राष्ट्र भाषा का भविष्य उज्ज्वल है।

-रीमा अग्रवाल - पिकरिंग (कैनेडा)

*

बेहतरीन अंक

हिन्दी चेतना का जनवरी 2013 अंक पढ़ने के बाद मैं पत्र लिखने पर मजबूर हो गई हूँ। बेहतरीन अंक और इसकी कहानियाँ पढ़ कर बेहद आनंदित हुई हूँ। किसी भी विशेषांक के बाद का अंक कुछ फीका लगता है, शायद रचनाओं के स्तर की तुलना होने लगती है। पर नहीं, इस अंक ने अपनी अलग और मज़बूत छाप छोड़ी है। 'गाँठ' कहानी को लेखक ने बड़ी बारीकी से बुना है, मनोविज्ञान की भाषा में 'ग्रंथि' को गाँठ के रूप में प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने निस्संदेह मनोविज्ञान पर शोध किया होगा, तभी तो इतनी गहरी कहानी लिख पाया। शक की बीमारी से घिरे हुए पति से पीड़ित बेटी और उससे प्रभावित माँ-बाप और भाई तथा बोझिल वातावरण को बखूबी से चित्रित किया गया है। शक से कई परिवार तबाह हो जाते हैं। कहानी का अंत इस कहानी को भूलने नहीं देगा। मैं विकेश निझावन जी की और कहानियाँ पढ़ना चाहूँगी। इसी अंक की 'सौदागर' एक और सशक्त कहानी है। पुरुष आज का हो या आदि काल का, स्त्री बस उसके लिए जनन का साधन है। जब पुरुषों को लगा कि नारी जाति स्वतंत्र व स्वावलंबी हो रही है, तो उन्होंने सोचा, कैसे इन्हें जकड़े चलो कोख ही किराए पर देने का प्रचलन शुरू कर देते हैं, मातृत्व और स्त्रीत्व दोनों पर भावनात्मक चोट पहुँचाई जाए। नारी पुरुष की इन चालों को समझ नहीं पाती और स्वभाव से भावुक होने से बस लुट जाती है।'सौदागर' कहानी की ये पंक्तियाँ-अरे भाई इतना परेशान क्यों हो? कहा तो काम हो जायेगा। यह इंडिया है दोस्त तुम्हारा अमेरिका नहीं, यहाँ आज भी पत्नी की डोर पति के हाथों होती है। वह कटेगी या उड़ेगी यह पति ही तय करता है। पितृसत्ता का घिनौना रूप है। डॉ.स्वाति तिवारी की 'चेंज यानी बदलाव' सरल-सदा भाषा में प्रवाहमयी सुलझी हुई कहानी है। डॉ. नरेन्द्र कोहली की पूरी कहानी पढ़ने के बाद लिखूँगी।

तीनों ही लघुकथाएँ बहुत पसंद आईं। डॉ.हरदीप कौर संधु की लघुकथा सुंदर हाथ मन को छू गई। राजेन्द्र यादव के इंटरव्यू से कुछ भी सार्थक नहीं ढूँढ पाई। बस इधर-उधर की बातें थीं। शशि पाधा का संस्मरण भारतीय सेना के जीवन का सही चित्रण प्रस्तुत कर उदास कर गया। डॉ.जगदीश व्योम और पूर्णिमा वर्मन के नवगीत अच्छे लगे। यूके और अमेरिका के दो तीन कहानीकारों की कहानियाँ ही मुझे प्रभावित करती हैं। उनमें से एक हैं सुधा ओम ढींगरा। सुधा जी की कहानी 'फ़न्दा क्यों?' पर विजय शर्मा की समीक्षा पढ़ी। कथाबिम्ब में मैंने इस कहानी को पढ़ा था। जिसका अंत छाप छोड़ गया था। समीक्षक की बात से सहमत नहीं कि इसका अंत कमज़ोर है, इसलिए कहानी को दोबारा पढ़ा, इसके इस तरह के अंत के कारण ही मुझे यह कहानी याद है और एक पाठक के नाते मुझे इसका अंत बहुत मज़बूत और उचित लगा। ख़ैर एक पाठक और समीक्षक का कहानी को पढ़ने, समझने और परखने का नज़रिया भिन्न हो सकता है। पूरी समीक्षा पढ़ कर मुझे यही लगा, विजय शर्मा इस कहानी की गहराई तक नहीं गई। शायद समीक्षा ऐसा ही होती होगी।

*

-जयश्री खरे (दिल्ली, भारत)

Mehul Desai

EFILE

R.R.S.P Life Insurance

- Visitors to Canada Health Insurance
- Critical Life Insurance
- Individual Life Insurance
- Business Tax Returns
- Corporate Tax Returns
- Personal Tax Returns
- Retirement Planning
- Segregated Funds, R.R.S.P.
- Business Insurance
- Critical Life Insurance with Return or Premium

KDI

57 Boswell Road, Markham Ontario L6B 0G3

Tel: 416.271.8691, 416.298.7067 Fax: 905.471.2355

Email: kditax@gmail.com

साक्षात्कार

(वरिष्ठ कवयित्री रेखा मैत्र से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

मुख्यधारा में स्वीकृति की किस कमबख़्त को फ़िक्र है : रेखा मैत्र

रेखा मैत्र

जन्म : बनारस (उत्तर प्रदेश)
शिक्षा: एम. ए (हिन्दी)
प्रकाशित कृतियाँ: दस काव्य संग्रह, सभी वाणी प्रकाशन से, पलों की परछाइयाँ, मन की गली, उस पार, रिश्तों की पगडंडियाँ, मुट्ठी भर धूप, बेशर्म के फूल, ढाई आखर, मोहब्बत के सिक्के, बेनाम रिश्ते, यादों का इन्द्रधनुष ।
संप्रति: 'साँझ के साये' पुस्तक की रचना और भ्रमण में व्यस्त ।

सम्पर्क:
5 East 14th place,
Unit # 1708
Chicago
IL- 60605
(H)312 -753 -5203
(cell) 708 -638 -1903
rekha.maitra@gmail.com

हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में अमेरिका के बहुत से रचनाकारों का योगदान है । उनमें एक हैं कवयित्री रेखा मैत्र । जिन्होंने कविताएँ ही लिखी हैं, दस पुस्तकें छप चुकी हैं । कई वर्ष हम मिल नहीं पाईं । अमेरिका की भौगोलिक दूरी ने हमें भी दूर रखा । विश्व हिन्दी सम्मेलन में खूबसूरत गोल -मटोल रेखा मैत्र को देख कर ही पहचान गई । गुलाबी साड़ी में अलमस्त सा व्यक्तित्व । बोलने का ढंग निराला । लगा नहीं कि व्यक्तिगत तौर पर पहली बार मिल रही हूँ । 'बन्धु' 'दोस्त' कहने के आपके अंदाज़ ने बस बाँध लिया । सूफ़ियाना स्वभाव । आप छोटी -छोटी कविताएँ लिखती हैं और संवाद में भी, थोड़े से, चंद ही शब्दों में प्रश्न को समेट देती हैं । रेखा मैत्र से कविताओं और आपकी सृजनयात्रा को लेकर जो बातचीत हुई, वह इस तरह है-

प्रश्न: रेखा जी, आप बहुत छोटी -छोटी कविताएँ लिखती हैं । कई भाव विस्तार भी चाहते होंगे तो आप उनके साथ न्याय कैसे कर पाती हैं ।

उत्तर: मेरी विवशता ही समझ लीजिये । मैं जो कहना चाहती हूँ, उसके समाप्त होते ही मेरी कलम अड़ियल बच्चे की तरह आगे न बढ़ने की ज़िद ठान लेती है । हार कर मुझे उसके सामने हथियार डालने पड़ते हैं । जहाँ तक विस्तार चाहते भावों का मसला है तो मुझे सिर्फ यही कहना है कि अपने तहत तो न्याय करने की कोशिश रहती है, आगे तो उन भावों की किस्मत, क्यों वे इस अनाड़ी रचनाकार के पास आये ? अपनी सफलता और असफलता का फैसला भी पाठकों पर ही छोड़ देती हूँ । उनके सुन्दर, सजीले पत्र मेरा मनोबल बढ़ाते हैं और उनके प्रश्न मुझे दिशा देते हैं ।

प्रश्न: वे कौन से क्षण थे जिन्होंने आप से पहले -पहल साहित्यिक कलम उठवाई ।

उत्तर: यूँ तो बचपन से ही संवेदनशील थी । आस पास की घटनाएँ देर तक असर छोड़ जातीं । मैं तब बहुत छोटी थी, मेरी सहेली की बड़ी बहन ने आत्महत्या कर ली थी । उस दु:ख से द्रवित हो मेरी पहली कविता फूटी थी । पिताजी ने बहुत प्रोत्साहन दिया था, पर माँ को लगा होगा कि कविता का रुझान मेरी पढ़ाई में उपेक्षा का कारण बन सकता है । उन्होंने कहा ,'' पढ़ना -लिखना साढ़े बाईस , कविता लिखने चली हैं ।'' उस कच्ची उम्र में बस कविता को तिलांजली दी । मुझे लगा था कि मेरी कविता माँ के कष्ट का कारण बनी है । वक़्त की आंधी में कविता न जाने कहाँ उड़ गई । साहित्य में रुचि अवश्य बनी रही । पढ़ाई के साथ -साथ, अच्छे -अच्छे कवियों और लेखकों को पढ़ना एक शगल बना रहा । फिर इस देश में परिवार का दायित्व निभाते, वक़्त सरपट भागता रहा । जीवन में भौतिक सुविधाएँ जमा होती रहीं । बच्चे जब बड़े हो गए और हमारे चार पहिये उनके लिए नाकाफ़ी हो गए, क्योंकि उनके अपने पंख उग आये थे । एक शून्य सा अपने भीतर उगा; जिसने इतना तो तय कर ही दिया कि भौतिक सुविधाएँ मुझे खुश नहीं रख पा रहीं । अपने लिए खुशी की तलाश ने एक बार फिर बचपन की रेखा को झिंझोड़ा और मैंने एलान कर दिया कि तंग आ गयी हूँ, इन पार्टियों से अब तो कुछ रचनात्मक हो तो बात बने। इस तरह एक संस्था 'उन्मेष ' का गठन हुआ। यहाँ हर माह अपनी रचनाओं की साझ और उस पर विचार विनिमय की बात थी । अब रचना कहाँ से लाऊँ ? पाँचवीं कक्षा से आज तक कुछ लिखा ही कहाँ ? फिर मेरे साथी -संगी काम आये । दोस्तों के प्रोत्साहन से लिखने की गाड़ी आगे बढ़ी । १९९९ में इन्हीं रचनाओं से मेरी सहेली प्रमिला भटनागर ने मेरी पहली पुस्तक ''पलों की परछाइयाँ'' प्रकाशित करा दी ।

प्रश्न: आप कविता क्यों लिखती हैं ?

उत्तर: कविता मुझसे कहती है कि मुझे लिखो । जब आस -पास का परिवेश मुझे हिला जाता है तो हरसिंगार सी झरती हैं कविताएँ । वेदना, खुशी, प्रवास सब मेरी कविता में घुल मिल जाते हैं । एक

गर्भिणी स्त्री सी स्थिति होती है, जब तक मेरे भावों को भाषा नहीं मिल पाती। जब सारे भाव मेरी कविता में समा जाते हैं तो प्रसव पीड़ा के बाद का चैन सा महसूस करता है यह मन ।

अपनी एक नज़्म से बात पहुँचाने की कोशिश करती हूँ - कभी कोई नज़्म/ अगर दफ़न हो जाती है/ तो उसकी चीख/ ठहर जाती है/ सन्नाटे चीरती -ठेलती/ अशरीरी आत्मा सी/ आस -पास तब तक/भटकती रहती है/ जब तक कागज़ पर/ अपना शरीर अख्तियार/ नहीं कर लेती ।

प्रश्न: आपकी जितनी भी कविताएँ मैंने पढ़ी हैं, वे भीतर का अंतर्नाद सा करती महसूस होती हैं, चाहे वे प्रकृति को लेकर हों, किसी घटना, क्षण या किसी शहर को लेकर लिखी गई हों । द्वैत से अद्वैतवाद का सफ़र लगतीं हैं । ऐसा दर्शन कहाँ से पाया ।

उत्तर: सुधा जी, मेरा ख़याल है कि जब हम जीवन को सतही तौर पर न देख कर उसकी गहराई में जाने का प्रयत्न करते हैं, तो चीज़ों को देखने का नज़रिया बदल जाता है । इंसान तब बाहर से भीतर की ओर सफ़र करने लगता है । फिर बाहर और भीतर दो नहीं रह जाते, एकात्म की स्थिति स्वत: ही पैदा हो जाती है । तब कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता ।

प्रश्न: आप की कविता की भाषा अनायास है या सयास है ।

उत्तर: मेरी कविता ही अनायास है, ज़ाहिर है कि उसकी भाषा भी अनायास ही होगी । कविता की तलाश में यदि कभी मैं बैठी हूँ तो कविता मुझे ठेंगा दिखा कर भागी ही है, पकड़ाई में कभी नहीं आई । इसीलिये मेरी कविताओं में कठिन शब्दों का समावेश भी प्राय: नहीं है ।

प्रश्न: आप की कविताओं के रूपक और बिम्ब आपकी भावाभिव्यक्ति में बहुत सहायक होते हैं । कुछ विद्यार्थी आप के बिम्बों पर शोध कर रहे हैं , यह जानना चाहती हूँ ।

उत्तर: कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की शोध छात्रा २००७ के कवियों के बिम्ब विधान विषय लेकर मुझ पर काम कर रही थी ।

प्रश्न: आज के कवियों में आप की पसंद ?

उत्तर: असल में मैं ही पुराने ज़माने की हूँ अत: पुराने कवि ही मुझे आज भी पसंद हैं । कबीर, सूर, निराला, प्रसाद, महादेवी, अज्ञेय, भारती, नीरज और बच्चन । किनको गिनूँ किनको छोड़ूँ, समझ ही नहीं पाता ये मन । दुष्यंत कुमार मेरे प्रिय गीतकार थे ।

प्रश्न: कविता के अलावा साहित्य की किस और विधा में कलम चलाई ।

उत्तर: कविता के अलावा एक बार एक कहानी 'वापसी 'लिखी थी । भारत की एक पत्रिका 'गर्भनाल ' में प्रकाशित भी हुई थी । कुछ प्रोत्साहित करते पत्र भी मिले थे, पर फिर भी कहानी में गाड़ी कुछ आगे नहीं बढ़ी । शायद कविता का आकार - प्रकार मेरे व्यक्तित्व के अनुकूल पड़ता है ।

प्रश्न: लिखने और पढ़ने के अलावा आप के और कौन-कौन से शौक हैं ? सिनेमा देखती हैं ?

उत्तर: संगीत और भ्रमण मुझे बेहद पसंद हैं । भारत में भी मैं सुर सिंगार संसद से सक्रिय रूप से जुड़ी थी और यहाँ भी संगीत के कार्यक्रम में, मुशायरों और कवि सम्मेलनों में जाने की कोशिश रहती है । भ्रमण तो मुझे जीवित रहने की खुराक सा लगता है । एक जगह ज़्यादा देर बने रहना जैसे जीवनी शक्ति को समाप्त सा करने लगता है ।

प्रश्न: आप ने बताया नहीं कि आप सिनेमा देखती हैं .....

उत्तर: देखती हूँ बन्धु, बिल्कुल देखती हूँ । सिर्फ कलात्मक सिनेमा । अन्य चलचित्रों पर समय बर्बाद नहीं कर सकती ।

प्रश्न: हम विश्व हिन्दी सम्मेलन में ही मिले थे । लेखकों से मिलने- जुलने के लिए ये सम्मेलन बहुत लाभकारी हैं । क्या यह हिन्दी का भला कर पाते हैं । विश्व हिन्दी सम्मेलनों के बारे में आप के क्या विचार हैं ?

उत्तर: ये सम्मलेन हिंदी को एक विशिष्ठ मंच तो ज़रूर देते हैं, बशर्ते के उस मंच का सदुपयोग किया जाए ।

प्रश्न: प्रवासवास आप की सृजनशीलता के लिए कितना सहायक सिद्ध हुआ ?

उत्तर: सृजनशीलता में आस -पास का परिवेश बड़ा मायने रखता है । यहाँ आने पर चीज़ों को देखने का नज़रिया ही बदल गया । यहाँ हमारा अनुभव भिन्न था । इसलिए प्रतिक्रिया भी भिन्न हुई । नए तजुर्बे ने नई दिशा दी । कविता देश की सीमा छोड़ विश्व में उड़ाने भरने लगी, ये प्रवास वास का ही कमाल हुआ न ।

प्रश्न: आप की कविताओं के लिए सामान्यत: आप की प्रेरणा भूमि क्या रही है ?

उत्तर: असल में प्रेरणा तो भीतर से ही मिलती है । जिस दृष्टि से हम बाहरी जगत को देखते हैं; वो हर व्यक्ति की अपनी अलग होती है, वही हर व्यक्ति को एक -दूसरे से भिन्न बनाता है, पर उसका उद्गम भीतर ही होता है ।

प्रश्न: कौन से समकालीन साहित्यकारों से आप प्रभावित हैं ? किन-किन को आप ने पढ़ा है ।

उत्तर: मेरे प्रिय लेखक अज्ञेय, प्रेमचंद्र, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, महादेवी वर्मा, प्रसाद, निराला, और भी इतने हैं कि जगह कम पड़ेगी दोस्त । रवीन्द्रनाथ ठाकुर,अर्नेस्ट हेमिग्वे और समर्सेत्मोम तथा तोल्स्तोय भी मुझे कम प्रिय नहीं हैं ।

प्रश्न: वाणी प्रकाशन से दस पुस्तकें आने के उपरांत आप स्वयं को कहाँ खड़ा पाती हैं । क्या मुख्य धारा ने आपको स्वीकार किया ?

उत्तर: वाणी प्रकाशन में मेरी दस पुस्तकें दस क़दम का सफ़र है । मुख्यधारा में स्वीकृति की किस कमबख्त को फ़िक्र है ।

प्रश्न: जिस प्रकार भारत के लेखकों की पुस्तकों की चर्चा होती है, क्या आप की पुस्तकों की चर्चा वैसी हुई ? प्रवासवास तो इसका कारण नहीं ..

उत्तर: सुधा जी, समुन्दर को कहाँ पता होता है कि कब उसमें एक बूँद शामिल हो गयी है । भारत तो हिन्दी का एक विशाल समुद्र है, जिसमें हिन्दी का एक नन्हा सा कण शामिल हो गया है, जो भारत से छिटक कर दूर जा बसा है । अब इन नन्हीं -नन्हीं बूँदों पर सागर की निगाह गई है कि नहीं ये रेखा नाम की बूँद को नहीं ही पता है । प्रवास यदि कारण हो तो आश्चर्य की बात नहीं है ।

रेखा जी की सकारात्मक और अलमस्त सोच ही उन्हें साहित्य जगत की उपेक्षाओं से परे रख ऊर्जावान बनाए हुए है; तभी तो औसतन हर वर्ष एक पुस्तक हिन्दी साहित्य को दे कर उसे समृद्ध कर रही हैं । उनके इस स्वभाव से ही सब उन्हें प्यार करते हैं .....।

*

कहानी

दो पाटन के बीच आये के .....!

महेन्द्र दवेसर 'दीपक'

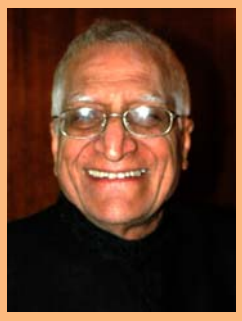

महेन्द्र दवेसर 'दीपक'

जन्म: नई देहली, 14 दिसम्बर, 1929
शिक्षा: प्रभाकर, बी.ए., एम.ए. - फ़ाइनल (अर्थ-शास्त्र), 1952 भारत सरकार की विदेश-सेवा के अन्तर्गत जाकार्ता (इंडोनेशिया) में स्थानांतरण के कारण परीक्षा में नहीं बैठ सके। 1952 में ही विदेश-सेवा अवधि में इंडोनेशिया सरकार के अनुरोध पर और भारत सरकार की विशेष आज्ञा पर Radio Republic Indonesia के हिंदी यूनिट का संस्थापन, संचालन और हिन्दी कार्यक्रमों के प्रसार का अतिरिक्त भार संभाला। 1971 से लंडन में निवास. 1976 से अन्तर्राष्ट्रीय समाचार एजेंसी Reuters World Service, Senior Technical Buyer के पद पर नियुक्ति और 1992 में अवकाश ग्रहण। युवाकाल के पश्चात तभी से लेखन कार्य दोबारा शुरू किया। तीन कहानी संग्रह प्रकाशित - 'पहले कहा होता', 'बुझे दीये की आरती', 'अपनी अपनी आग'. इस अंतिम पुस्तक पर वर्ष 2010 में भारतीय उच्चायोग द्वारा लक्ष्मीमल सिंघवी सम्मान और लंडन के House of Commons में पद्मानन्द साहित्य सम्मान से नवाज़ा गया। 2013 में चौथा कहानी-संग्रह प्रकाशनाधीन। 'हिन्दी चेतना' के इस अंक में प्रकाशित कहानी को वर्ष 2011 का कमलेश्वर कहानी पुरस्कार प्रदान किया गया है। लेखक की कहानियाँ भारतीय पत्रिकाओं और इ-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं और पसंद की जा रही हैं।

mpdwesar@yahoo.co.uk

चार दिन ! केवल चार दिन !! .... इन चार दिनों में मैं स्वयं अपने को कितनी छोटी हो गई महसूस कर रही हूँ। कहने को मैं , नीलिमा खरे, लन्दन के भारत हाई कमिशन में फर्स्ट सेक्रेटरी हूँ। कागज़ों से जूझना, उलझना बच्चों के खेल जैसा मेरा रोज़ का काम है। मगर इंसानों से निपटना, उन्हें कोई कठिन फैसला सुनाना मुझे बहुत भारी लगता है। कोरा कागज़ होता है अंधा, गूंगा, बहरा! मगर उस पर लिखी लिखाई बोलती है। .... और इंसान ? वे देखते, बोलते, सुनते हैं और जो वे सुनते हैं, उन्हें सहना पड़ता है।

चार दिन पहले की ही तो बात है । मेरे आफिस में मेरे सामने बैठी हुईं थीं, रश्मि चावला .... देखने में उम्र होगी यही सत्तर और अस्सी वर्ष के बीच या शायद उससे भी ज़्यादा .. शिथिल, कमज़ोर देह और समय की मार खाए चेहरे पर झुर्रियों का हजूम! अपने साथ वे कुछ कागज़ तो लाई ही थीं मगर अपनी बात वे पूरे विस्तार से ज़ुबानी भी समझाना चाहती थीं।

वे सुना रही थीं और मैं सुन रही थी ''भारत और पाकिस्तान दो देश ! .... दोनों की अलग अलग सरकारें !! दोनों की सरकारी चक्की के दो पाटों में आ गये हैं हम दोनों माँ, बेटा !!! पाकिस्तान की सरकार न मुझे छोड़ेगी न मेरे बेटे जावेद को। आई.एस.आई . के पालतू भेड़िये .... वे लश्कर, वे मुजाहिदीन ... वे कहीं भी आकर हमें दबोच सकते हैं। ... और मैं पगली, यहाँ आपके पास तो आ गई हूँ और डरती भी हूँ कि आज जो आप सुनेंगी और मेरी पेटीशन में जो आप पढ़ेंगी, उसके बाद आपकी सरकार हमारा क्या हश्र करेगी !''

फिर रश्मि जी ने अपना परिचय दिया, ''लाहौर के जाने माने प्रोफ़ेसर ब्रजेश चावला को तो बहुत लोग जानते हैं। आप भी जानती होंगी। मैं उनकी पत्नी हूँ।''

एक झटका सा लगा। क्या कह रही है ये मैडम ? ब्रजेश चावला ? ... लाहौर वाले प्रो. ब्रजेश चावला ? बृज अंकल तो विदेश में मेरे सहयोगी और मित्र योगेश के डैडी हैं। कभी हम दोनों के बीच एक अफेयर भी चल रहा था । हमारी दोस्ती केवल साउथ ब्लाक तक ही सीमित नहीं थी । घरों में आना जाना भी था । मैं अब भी उसे 'योगी' कहकर पुकारती हूँ और मैं हूँ उसके लिए, वही पहले वाली 'नीलू' ! यह और बात है कि योगी कि शादी कहीं और हो गयी। कमला आंटी और ब्रजेश अंकल ने मुझे अपनी बहू तो बनाया नहीं, बेटी बना लिया। बेटा और बहू दफ़्तर में भी एक साथ हों और घर में भी, यह उन्हें मंजूर नहीं था और मैं काम से इस्तीफ़ा देने को तैयार नहीं थी। बस यहीं आकर बात टूट गई। योगी इस्लामाबाद के भारतीय हाई कमिशन में फ़र्स्ट सेक्रेटरी है और मैं यहाँ लन्दन आ पहुँची। हम दोनों के बीच वह पहले वाला सम्पर्क ढीला पड़ गया है। दीवाली और नववर्ष के कार्डों का आदान-प्रदान तो होता ही है, कभी कभार फ़ोन पर बातें भी हो जाती हैं। जब योगी ने फोन पर बताया कि उसके यहाँ बेटा हुआ है और उसके मम्मी, डैडी भी अपने नए पोते का मुँह देखने के लिए इस्लामाबाद पहुँचे हुए हैं तो मैंने उन्हें बधाई दी और फिर उन सब से बातें भी हुईं।

मुझे टोकना पड़ा, ''देखिये मैडम, मैं उस परिवार को जानती हूँ । ब्रजेश अंकल और कमला आंटी मुझे अपनी बेटी मानते हैं । उनका बेटा योगेश मेरा सहयोगी और मेरा अच्छा मित्र भी है और आजकल इस्लामाबाद में नियुक्त है ।''

उन्हें बुरा लगा । झट अपने बैग में से एक फ़ोटो निकाल दिखलाया, ''मैं उनकी पहली पत्नी हूँ और यह रहा इसका सबूत।''

एक बहुत पुरानी काली-सफेद तस्वीर थी जो अब धुँधला गई थी - भूरी पड़ गयी थी। तस्वीर में रश्मि जी दुल्हन बनी पूरे शृंगार में थीं और साथ-साथ में दूल्हा बने बैठे थे ब्रजेश अंकल ! दोनों के गले में फूलों के हार थे । तब उन मैडम ने स्वयं तस्वीर को पलट दिया । उसके पीछे 'अमृत स्टूडियो, गवालमंडी, लाहौर' की मुहर, ऑर्डर नम्बर और तारीख लिखे मिले .... तारीख थी, '10 मार्च,

1946'।

मैं सोचती रही कि अंकल, आंटी ने तो पहले कभी नहीं बताया कि कमला जी उनकी दूसरी पत्नी हैं।

''तस्वीरें'' मेरे पास और भी थीं मगर लाहौर में ही राख हो गईं। वही.... सब बैंड, बाजा, बारात , ... घोड़ी पर सवार बृज ... अग्नि के गिर्द हमारी परिक्रमा .. मेरी माँग में लगता सिंदूर। कम से कम बीस तस्वीरें थीं। हमारी शादी की मेरे पास अब यही एक निशानी रह गयी है और अपने अंतर में मैंने संभाल रखा है उनका महीनों का पति-प्रेम और उम्र भर का बिछोह।''

पल भर का मौन ! फिर रश्मि जी ने कहना शुरू किया –

मुझे मृत समझकर उन्होंने दूसरा विवाह रचा भी लिया तो इसमें दोष न उनका था, न कमला का और न ही मेरा ! मेरा दोष तो बस यही था कि बँटवारे के समय मैं गर्भवती पीछे छूट गई थी। तीन महीने का गर्भ था। बीमार रहने लगी थी। आपके ब्रजेश अंकल मेरे लिए दवाई लेने निकले ।

मैंने फिर टोका, ''देखिये , आप मुझे ''आप'' कहकर मत पुकारिए । एक तो आप मुझसे उम्र में बड़ी हैं । आप ब्रजेश अंकल की पहली पत्नी हुई, तो फिर आप मेरी बड़ी आंटी लगीं और कमला आंटी हुई मेरी छोटी आंटी ।

रश्मि आंटी कहती गयी, हमारे घर से कोई बहुत दूर नहीं थी डाक्टर अरुण और उनकी पत्नी डाक्टर ऊषा सहगल की क्लिनिक । तुम्हारे बृज अंकल मेरे लिए दवाई लेने गए । तभी गली में दंगे शुरू हो गये । वे उनकी क्लिनिक पर पहुँचे और देखा कि वे दोनों तो स्वयं भागने की तैयारी कर रहे थे । ब्रज भी साथ हो लिए। क्लिनिक के एक मुसलमान कम्पाउंडर के हाथ एक स्लिप छोड़ गये, ''बाहर बहुत खतरा है और मैं इन दोनों की कार में अमृतसर जा रहा हूँ। दो चार दिन में जब हालात सुधरेंगे तुम्हें भी निकाल लाऊँगा।''

मुझे छोड़ गए पड़ोसियों के भरोसे जो वे समझते थे बहुत भले लोग हैं। उन्हीं 'बहुत भले लोगों में था, युसूफ कुरैशी, साथ वाले घर का हमारा पड़ोसी! उसी पर इनका सबसे अधिक भरोसा था। वही निकला सबसे बड़ा दग़ाबाज़ ! बृज की वह स्लिप मुझे लेटर बाक्स में मिली, मेरी किस्मत तो नहीं

मजहब बदल गया था और नमाज़ के तौर तरीके मुझे सिखा दिए गये थे। फिर भी मैं मन ही मन सवेरे शाम गायत्री का पाठ भी करती, गीता के श्लोक भी दोहराती ! कुछ काम न आया। – न वो नमाज़ें, न गायत्री मन्त्र, न गीता के श्लोक !

बदल सकती थी! वह हर रात मेरे पास आ जाता और मेरे साथ जबरदस्ती करता। मजबूर थी, हो गया समझौता। ... एक मूक समझौता, जो होता है एक मेमने का कसाई और उसकी छुरी के साथ ! फिर बिना तलाक और बिना निकाह के मैं 'रश्मि चावला' से 'रेशमा कुरैशी' बना दी गई। उसने हमारी शादी का हर नामो निशाँ मिटा डाला सिवाय इस तस्वीर के जो उसकी नज़रों से दूर मैंने किसी तरह से छुपाकर रख ली थी।

एक और निशानी मेरे पास रह गई थी । उसे वह कैसे जलाता? मेरे दिन पूरे हुए और मेरी गोद में आया हमारा बृज का और मेरा बेटा जावेद। यूसुफ ने उसका यही नाम रखा था।

मजहब बदल गया था और नमाज़ के तौर तरीके मुझे सिखा दिए गये थे। फिर भी मैं मन ही मन सवेरे शाम गायत्री का पाठ भी करती, गीता के श्लोक भी दोहराती ! कुछ काम न आया। – न वो नमाज़ें, न गायत्री मन्त्र, न गीता के श्लोक ! ... और बलात्कार होता रहा।

आंटी जी ने याद दिला दीं मेरे जन्म से बहुत पहले की वे बातें जिनके बारे में मैंने बहुत कुछ पढ़ रखा था, आज उनसे सुन भी लिया –

देश विभाजन के कुछ समय बाद दोनों सरकारों के बीच समझौता हुआ था कि दोनों तरफ की पीछे छुट गयी अपहृत रश्मियों, रेशमाओं को निकालकर उनके परिवारों को लौटाया जाए और इस काम के लिए एक संयुक्त फ़ौजी संगठन बनाया गया। समझौता नेक था, मगर नीयतें , लड़कियों के अपने रिश्तेदारों की और उनके शिकारियों की ! उनके सगे सम्बन्धी जानबूझ कर उन तक नहीं पहुँचे । फेंक दिया उन्हें, जैसे दुकानदार अपने गले सड़े फल, तरकारी फेंक देते हैं । हज़ारों लड़कियाँ अपने जल्लादों के फंदों में फंसी रहीं!

मैं सोचा करती, क्या मैं भी हूँ एक गली सड़ी तरकारी ? कोई मुझे भी लेने आयेगा? मेरा भ्रम गलत निकला । कोई चौदह महीने बाद तुम्हारे अंकल मुझे लेने आये थे । गवाल मंडी की हमारी गली में लाऊड स्पीकरों पर 'मिसेज़ चावला वाइफ़ आफ प्रो. ब्रिजेश चावला' की गुहार लगती रही । मगर मैं तो दबोच ली गयी थी, लूट का माल थी। यूसुफ के बराबर वाले घर के गोदाम में छुपा दी गई थी। मेरी गोद में जावेद ... मुँह में ठूँसा गया कपड़ा, और यूसुफ के छुरे की नोक मेरी गर्दन पर। मैं आवाज़ भी कैसे करती ?

मेरी बारी आई तो धरा रह गया वह कागज़ी समझौता । बृज खाली हाथ लौट गए । बस समझ लिया कि दंगों में जहाँ घर गया, जायदाद गई , वहाँ पत्नी भी गई ।

आंटी जी रो रही थीं। मेरी आँखें भी छलक गयीं । मैंने उन्हें पानी का गिलास पेश किया, कुछ अपने को संभाला। तभी कमरे में आ घुसा मेरा सेक्रेटरी, मेरे मातहत का मेरी आँखों में आँसू देखना मुझे अच्छा नहीं लगा। मुझे और भी बुरा लगा जब उसने याद दिलाया कि पन्द्रह मिनट में मुझे हाइ कमिश्नर साहिब के ऑफ़िस में अफ़सरों की मीटिंग में शामिल होना है ।

अभी मुझे मीटिंग की तैयारी करनी थी और समय बहुत कम था । पल भर को मैंने सोचा और वह कर दिया जो यदि आंटी की जगह कोई और होता तो मैं कभी न करती । अपना कार्ड उन्हें थमाकर कह दिया, ''आंटी जी, आपकी बात तो बहुत लम्बी लग रही है । अभी तो आपने यह भी नहीं बताया कि भारत और पाकिस्तान की सरकारों से आपका झगड़ा क्या है? कल शनिवार है, परसों इतवार। इन दो दिनों में फ़ोन करके आप कभी भी घर आ जाइये। तब आराम से बेरोक-टोक आप से बात हो सकेगी''।

वे गिड़गिड़ाईं, लेकिन बेटी, ''कयामत खड़ी है सर पर! कोई फैसला जल्दी करना होगा।'' तब जल्दी में मेरे मुँह से निकल गया, ''आपने मुझे 'बेटी' कहा है न? भरोसा रखिए, जो भी मुझसे बन पड़ेगा, मैं अवश्य करूंगी ।''

शनिवार को सवेरे ही आंटी जी ने फोन कर दिया और आधे घंटे बाद वे आ भी गईं। चाय, पानी के बाद अभी बात शुरू भी नही हुई थी कि

मेरे मियाँ जी ने मुझे कमरे से बाहर बुलाया। लगे डांटने, ''अब तक तुम ऑफ़िस का काम घर ले आती थीं, मैंने कुछ नहीं कहा । आज तो तुमने घर में ही कचहरी लगा ली । मैंने सोचा था कि आज अच्छी करारी धूप है , अनिता और सुमिता (मेरी दो बेटियाँ , उम्र पाँच साल और तीन साल) को ब्राइटन ले चलेंगे ।'' उन्हें समझाना पड़ा कि यह बाहर की कचहरी नहीं, एक तरह से घर ही का मामला है।

वे तीनों चले गये और हमारी बातें शुरू हुईं।

''जावेद मेरे पास रह गया... आधी हिन्दू, आधी मुसलमान माँ और गाँधीवादी ब्रजेश चावला का बेटा, हम दोनों के अनुरूप कहाँ रहा ? जावेद तो अच्छा मुसलमान भी न बन सका । उसने शादी नहीं की, बस जिहाद का नारा अपना लिया और बन गया पक्का आतंकी।'' आंटी ने एक ठंडी साँस ली।

किस-किस की शिकायत करूं ? यूसुफ ने मुझे खराब किया, वह फिर भी बेगाना था। मेरी कोख और मेरा खून भी तो बेवफ़ा निकला। मैं गलत समय पर गर्भवती हुई और जो जिहादी बेटा पैदा हुआ, वह भी तो गलत निकला!

किस्मत का एक और छलावा ... बृज के बिना एक उम्र गुज़र गई और भी गुज़र जाती मगर तीन महीने पहले, एक दिन अचानक गवाल मंडी की हमारी गली में वे एक बार फिर अपनी पुरानी दहलीज़ पर आ खड़े हुए। यह वही घर था जो उनके पिता जस्टिस चावला ने हमारे विवाह पर उपहार दिया था। उसके गेट पर 'बृज- रश्मि' हम दोनों के नाम की संगमरमर की शिला लगवा दी गई थी । वही घर का नाम भी था और हमारा पता भी । अब वहाँ उन्हें लगी मिली एक दूसरी शिला, 'यूसुफ मंज़िल'। उनका सोच तो यही था कि मैं दुनिया में नहीं रही। वे मुझसे मिलने नहीं आये थे! बस सोच लिया लाहौर तो देखना ही है, अपना पुराना घर भी देख लूँ। यही तमन्ना उन्हें यहाँ खींच लाई।

हमारे घर की घंटी बजी। जावेद ने दरवाज़ा खोला। उन्होंने यूसुफ से मिलना चाहा। जावेद ने कह दिया, 'अब्बा तो बरसों पहले इंतक़ाल फ़रमा गए।' तब उन्होंने अँधेरे में तीर छोड़ा, 'मेरी उम्र का कोई तो अंदर होगा? उन्हें ख़बर कर दो कि

यह वही घर था जो उनके पिता जस्टिस चावला ने हमारे विवाह पर उपहार दिया था।उसके गेट पर 'बृज- रश्मि' हम दोनों के नाम की संगमरमर की शिला लगवा दी गई थी । वही घर का नाम भी था और हमारा पता भी । अब वहाँ उन्हें लगी मिली एक दूसरी शिला, 'यूसुफ मंज़िल'।

भारत से बृज चावला आया है।' शायद वे मुझे पहचान लें।

खुले किवाड़ से आवाज़ें भीतर भी आ रही थीं। जावेद ने आकर मुझे बतलाया कि बाहर एक बूढ़ा खड़ा है। भारत से आया है। कोई चाय वाला है। अपना नाम बृज बतलाता है । वह बक गया, ''हमें नहीं चाहिए किसी काफ़िर के हाथ की चाय! मैं बाहर से ही टरका देता हूँ ।''

एक उम्र के बाद मेरे पति घर आए थे। उन्हें दरवाज़े से ही कैसे टरकने देती? मैंने डांट लगाई, 'घर आय मेहमानों को दरवाज़े से भगा देने की रिवायत नहीं है , हमारे यहाँ! वो इतनी दूर से आए हैं, उन्हें मेहमानखाने में बिठाओ।'

हम दोनों की नज़रें मिलीं और एक दूसरे पर टिकी रह गईं। जावेद से झूठ बोलना पड़ा कि ये चावला साहिब हैं ... प्रो. ब्रजेश चावला । बँटवारे से पहले यह हमारे पड़ोसी थे, बगल के मकान में रहते थे!

बृज को जावेद का परिचय कुछ यूँ दिया, यह हैं हमारे बरख़ुरदार जावेद क़ुरैशी। माशाल्लाह, पचास साल के हो गये हैं। यह उन्हें इशारा था कि दाढ़ी के पीछे छुपे अपने बेटे का मुखड़ा पहचान लो। यह वही है जिसे तुम गर्भ में छोड़ गये थे।

चाय की मेज़ पर उन्होंने बताया कि वे इस्लामाबाद में अपने बेटे के पास ठहरे हुए हैं जो भारतीय हाई कमिशन में फर्स्ट सेक्रेटरी हैं । मैं समझ गई, बृज ने दूसरी शादी कर ली है और इनका बेटा योगेश एक बड़ा आदमी हो गया है। इनका दूसरा विवाह स्वाभाविक था, होना ही था। एक चुभन सी महसूस हुई। मेरा जावेद तो कुछ भी न बन सका। विभाजन के समय बृज बिछड़े न होते तो योगेश के स्थान पर हमारा जावेद होता।

वे क्लिफ्टन होटल में ठहरे हुए थे। पाकिस्तान सरकार की आज्ञानुसार वे लाहौर में सात दिन ही रुक सकते थे। मुझसे रहा न गया, बस कह दिया कि यहाँ अपना घर है तो आप होटल में क्यों रहें? .. और वे अपने पुराने घर में अपनी पत्नी के 'मेहमान' आ बने! जावेद को यह बात ज़हर लगी पर वह लाचार क्या करता?

अगले दिन सवेरे सवेरे जावेद अपने काम पर चला गया और हम दोनों भी सैर को निकल पड़े। दोनों के बीच वह ज़रा भी झिझक अब भी बाक़ी थी। लगता था जैसे दो अजनबी राह में मिल जाएँ और एक साथ चलने लगें। फिर उन्होंने ही झिझक तोड़ी और बतलाया कि मेरे बिना पतवार की नाव हो गये थे। उन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा। एक नया परिवार संजोना पड़ा। मैंने कह दिया कि तुम्हें तो पतवार भी मिल गई और परिवार भी। मुझे क्या मिला? मैं बन गई आंधी की धूल! बुहार कर फेंक दी गई। उनकी उदास आँखें मुझे ताकती रहीं .. उन स्नेहल आँखों में हमदर्दी थी, मजबूरी थी!

गोपनीयता भी एक तरह का झूठ होती है, मौन झूठ ! घुटे-घुटे से स्वर में वे कह गये, 'मेरे नये परिवार में कोई नहीं जानता कि मेरा पहले विवाह हुआ था!'

मेरे मुँह से निकल गया, 'तुमने तो मेरा अस्तित्व ही नकार दिया.. कह देते मैं दंगों में मर गई।'

सात दिन तो क्या, जावेद ने दूसरे ही दिन

बवाल खड़ा कर दिया। उसकी शिकायत थी कि एक 'काफ़िर, पराए मर्द' के साथ बाहर क्यों जाती है? गली में लोग उंगलियाँ उठा रहे हैं । उसकी शिकायत तो मुझसे थी मगर वह चीख-चीख कर बृज को सुना रहा था। मैंने कहा भी कि ऐसा नहीं है? मैं माँ हूँ तुम्हारी? वह बकवास करता रहा।

बृज सहम गए। मुझे टैक्सी मँगवाने को कहा। मेरा जी भर आया। उनके कानों में फुसफुसा दिया, 'फिर से ज़िन्दगी भर के लिए छोड़े जा रहे हो! मेरे हिस्से के सात दिन पूरे करके जाओ। जावेद आखिर है तो हमारा ही बेटा। हमारी शादी की एक तस्वीर अभी भी है मेरे पास। अब तक छुपाकर रखी हुई थी। कल उसे दिखा देंगे। वह सब समझ जाएगा।'

बृज रुक गए पर उनका अगला दिन नहीं आया। सुबह उठी तो न वे अपने कमरे में मिले, न उनका सामान। वहाँ जावेद था, एक बाल्टी थी और बाल्टी में लाल पानी। जावेद फ़र्श पर झुका खून के छींटे धो रहा था। मुझे देखते ही बोला, अम्मी, शुक्र मनाओ! भारत सरकार का ख़तरनाक जासूस निकला यह मेहमान। इस्लामाबाद से ही हमारे जासूस उसके पीछे लगे हुए थे। मुझे कल शाम पता चला और हुक्म हुआ कि रातों-रात इसे खत्म कर दो। वह डींग मार रहा था, 'किसी सोये हुए को ख़त्म करना कितना आसान है। न कोई झगड़ा, न हाथापाई। ख़ंजर का एक वार सीने के पार और काम तमाम । अब तक तो हमारे आदमी उसकी लाश भी ठिकाने लगा चुके होंगे।'

जावेद का एक एक शब्द मेरे गले से तेज़ाब की तरह उतर गया और मैं चीख उठी, 'ऊपर गोदाम में पुराने बड़े स्टील ट्रंक की तह में उस 'खतरनाक जासूस' की एक तस्वीर है। यहाँ उठा लाओ, तसल्ली हो जायेगी। वह तस्वीर ले आया।'

जावेद ने सर पीट लिया। वह चीखा, गुनाहे-अज़ीम हो गया। उसका तलख़ सवाल था, अम्मी आप ने पहले क्यों नहीं कहा? मैंने कह दिया, तुम्हें तो एक काफिर के हाथ की चाय भी मंज़ूर नहीं थी। काफिर माँ कैसे मंज़ूर कर लेते? मैं भी तो सोई पड़ी थी। आसान काम कर देते, मेरे सीने में भी खंजर उतार देते।

हम दोनों माँ-बेटा रो रहे थे । मैं न तो बृज के अंतिम दर्शन कर सकी, न उनका अंतिम संस्कार। हम तो ठीक से उनका मातम भी न कर सके। दरवाज़े की घंटी बजी और हमें झकझोर गई। दरवाज़े पर था जावेद के बचपन का दोस्त, पुलिस इंस्पेक्टर हमीद। तभी से मैं उसकी 'खाला' रही ही हूँ। सरकारी हलकों में सोचा जा रहा था कि बृज मुझे ही क्यों मिलने आये? उनकी 'जासूसी' में मैं भी शामिल थी और रातों-रात मेरी गिरफ़्तारी के वारंट निकाल दिए गये थे। पुलिस की वैन गली की नुक्कड़ में खड़ी थी। उसका ज़मीर कैसे मानता कि अस्सी साल की अपनी मुंहबोली ख़ाला को हथकड़ी लगवाये। उसने कुछ मिनटों की मोहलत दी और हमें पिछले दरवाज़े से भाग निकलने को कहा। वह 'खुदा हाफ़िज़' कहकर चला गया।

हमें भागना पड़ा। जल्दी-जल्दी में जो भी हम समेट सके, सूटकेस में भरा। मेरी शादी में मिला सोना तो यूसुफ हज़म कर चुका था। जावेद के पास पड़े थे लश्कर के कोई पाँच हज़ार डालर।

हम दोनों भी सैर को निकल पड़े। दोनों के बीच वह ज़रा भी झिझक अब भी बाक़ी थी। लगता था जैसे दो अजनबी राह में मिल जाएँ और एक साथ चलने लगें। फिर उन्होंने ही झिझक तोड़ी और बतलाया कि मेरे बिना पतवार की नाव हो गये थे। उन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा। एक नया परिवार संजोना पड़ा।

तुम्हें क्या बताऊँ किस-किस को घूस दी, किस-किस को बेवकूफ़ बनाया। लुकते, छुपते किसी तरह से हम यहाँ इंग्लैण्ड आ गए। पाकिस्तान के हम दो भगोड़े तीन महीनों से यहाँ हैं, अवैध, खानाबदोश। अब न कोई अपना घर रहा, न ठिकाना, न कोई अपना देश, पल्ले कोई पैसा भी नहीं बचा और वहाँ हम लौट नहीं सकते।

आंटी जी फफक-फफक कर रोने लगीं। उनकी हालत मुझसे देखी नहीं जाती थी। उनसे तो अब बोला भी नहीं जा रहा था। मुझे ही कहना पड़ा 'मैं आपकी स्थिति समझ गई हूँ। आज तो मैं कुछ नहीं कर सकती, ऑफिस बंद है। परसों पाँच बजे इंडिया हाउस आ जाइये। सब ठीक हो जाएगा। मैं आपकी पूरी मदद करूंगी।'

आंटी गदगद हो गईं, 'हम उम्र भर तुम्हारा अहसान मानेंगे। मैं जावेद को भी साथ ले आऊँगी। तुम उससे भी मिल लेना।'

मैंने आंटी को सहारा दिया और अपनी कार में समीप के अंडरग्राउंड ट्यूब स्टेशन तक छोड़ आई।

मुझे इस्लामाबाद में योगी और कमला आंटी का ख्याल आया। उनपर क्या गुजर रही होगी। विश्वास नहीं होता था कि बृज अंकल अब दुनिया में नहीं रहे। पाकिस्तान में रात हो चुकी थी। इतवार को तड़के सवेरे ही इस्लामाबाद का नम्बर मिलाया।

कमला आंटी ने फोन उठाया। वे बिलबिला उठीं, क्या बताऊँ बेटा? तुम्हारे अंकल हफ्ते भर के लिए लाहौर गए थे। तीन महीने से ऊपर हो गए। उनकी कोई खबर नहीं। मालूम नहीं कहाँ गुम हो गए। योगेश से भी बात हुई। उसका व्यथित स्वर भी सुना, क्लिफ्टन होटल में कमरा बुक किया था । होटल से पता चला कि वे घंटे भर के बाद ही चेक आउट कर गये थे। पाकिस्तान सरकार से मदद को कहा। वे कहते तो हैं कि उन्होंने लाहौर के सभी होटलों, हस्पतालों में छनबीन कर ली है। कुछ पता नहीं चला। अब तो हमीं से पूछ रहे हैं क्या उनका स्वास्थ्य और दिमागी संतुलन ठीक थे, घर में कोई झगड़ा तो नहीं हुआ था?

उसने फ़ोन रख दिया। यह सब तो मैं पहले से जानती थी। उन्हें सांत्वना देना भी ज़रूरी था। मैंने दोबारा फ़ोन कर दिया और झूठ मूठ की तसल्ली दे डाली, योगी, तुम हिम्मत रखो। भगवान पर भरोसा रखो। अपनी मम्मी को सहारा दो। अंकल ज़रूर

आ जाएँगे।

रश्मि आंटी की लम्बी चौड़ी याचिका ने खड़े कर दिए हैं कुछ ऐसे प्रश्न, कुछ ऐसी समस्याएँ जिनका मेरे पास कोई समाधान नहीं। अपनी याचिका के अंतिम पैराग्राफ में वे लिखती हैं –

जावेद हम सबका मुजरिम है, अपने पिता का, मेरा, मिसेज़ कमला चावला का, मिस्टर योगेश चावला का और भारत सरकार का। वह स्वयं अपने को क्षमा नहीं कर सकता। कभी मुझसे क्षमा माँगता है, कभी सज़ा ! मैं उसकी माँ, न उसे माफ़ कर सकती हूँ, न सज़ा दे सकती हूँ। बेटे की सज़ा माँ भी तो झेलती है। मिसेज़ कमला से पहले बृज मेरे पति थे। वे माँ, बेटा उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे। भारत सरकार का क्या रवैया होगा, सोचकर डर लगता है।

असली मुजरिम पाकिस्तान में है। वहाँ के धर्मान्ध सरकारी चमचों का खिलौना बना मेरा जावेद। न वे मुजरिम भारत सरकार को मिलेंगे और न पाकिस्तान में हुए जुर्म के सबूत। मैं क़ानूनी दाव-पेच नहीं जानती फिर भी समझती हूँ कि मेरी याचिका जावेद का इक़बाले-जुर्म नहीं माना जा सकता।

भारत सरकार कहती आई है कि जो आतंकी हथियार छोड़कर सामने आ जाएँगे, उन्हें क्षमा कर दिया जाएगा और वे फिर से समाज की मुख्यधारा में शामिल हो सकेंगे। जावेद सरकार की इस कसौटी पर पूरा उतरता है और हर तरह से दया का पात्र है । जैसे गल गल कर सोना खरा होता है, पश्चाताप की अग्नि में जलकर फ़ीनिक्स की तरह राख से एक नया जावेद उठ खड़ा हुआ है। भारत के कौमी निशाँ में अंकित गुरुमन्त्र 'सत्यमेव जयते' से प्रेरित होकर मैंने निसंकोच सत्य उगल दिया है। मगर जावेद कहता है कि अम्मी आप फ़िज़ूल कागज़ काला कर रही हैं। सरकारें जो कहती हैं, वो करती नहीं। मेरा भी यही प्रश्न है कि कौमी निशाँ का यह गुरुमंत्र क्या महज़ दिखावे का है?

पाकिस्तान का इल्ज़ाम है कि मैं भारतीय जासूस हूँ। ऐसा होता तो क्या भारत सरकार इस रहस्य में मेरे साथ शामिल न होती? मैं तो भारत की नागरिक भी नहीं।

मैं अब भी अपने को भारतीय मानती हूँ। ब्रजेश चावला विख्यात भारतीय थे। मैं भी भारतीय थी। मैंने अपनी भारतीयता त्यागी नहीं थी। वह मुझसे एक बलात्कारी ने छीन ली थी। अब दुनिया की हर न्याय-व्यवस्था से दूर वह अपनी कब्र में दफ़न है। जावेद की भारतीयता भी उसके जन्म से पहले ही उससे छीन गई थी। मुझे भारत का वीज़ा या असाइलम नहीं चाहिए। मेरी अपील है कि हमें हमारी भारतीयता वापस करो। जो भी अनर्थ हुए हैं कभी न होते और हम एक सुखी परिवार होते, यदि विभाजन के समय मैं भी अपने पति के साथ भारत आ सकती।

देश विभाजन जनित परिस्थितियों का शिकार एक मासूम मुजरिम, जावेद अनजाने में अपने पिता की हत्या कर बैठा। मैंने अपनी याचिका में यही समझाने का प्रयत्न किया है।

दो सरकारों की चक्की में आ फँसे हम माँ बेटा! भारत सरकार के हाथों में हैं हमारा निस्तार। आशा है फैसला हमारे हक में होगा।

विनीता,

रश्मि चावला

मैं अपना दोष स्वीकारती हूँ कि रश्मि आंटी की अर्ज़ी पढ़े बिना, उनकी बेवस भीगी आँखें पढ़ लीं और झूठा ब्यान दे बैठी कि मैं उनकी पूरी मदद करूंगी। बस सोच लिया कि परिस्थितियों के मारे ये बेगाने लोग, दरअसल है तो अपने ही। मेरे ही हाथों में कुछ भी नहीं। एक तरफ है आंटी की कागज़ पर लिखाई और दूसरी तरफ पत्थर की लकीरें। अंधे कानूनों की और उनके तहत गढ़े गये अंधे नियमों की।

'मासूम मुजरिम', जावेद भारत आ भी जाए तो उसका फैसला हमारी न्याय – संहिता के अनुकूल किसी कोर्ट कचहरी में होगा । ... और रश्मि आंटी? हमारे कानून और नागरिकता – नियमों में कोई सीधा, टेढ़ा उपाय नहीं है कि विभाजन के इतने वर्षों बाद उन्हें भारतीय नागरिकता मिल सके।

यहीं हैं वे कमबख़्त चार दिन जिनमें मैं बहुत छोटी हो गई हूँ। मैं अपने आफिस में हूँ। रश्मि और जावेद से पाँच बजे मिलने का वायदा है। वायदा 'पूरी मदद' का। .. बस कह दिया, सब ठीक हो जाएगा। क्या ठीक हो जाएगा? ज़्यादा से ज़्यादा मैं उनकी याचिका दिल्ली भेज सकती हूँ। वहाँ मेज़ों के बीच भटकते फिरेंगे ये कागज़ के टुकड़े। वहाँ इंसान भी कागज़ समझे जाते हैं। ... फिर महीनों बाद फैसला आयेगा जो मैं अभी जानती हूँ।

पाँच बजने वाले हैं। वे माँ-बेटा अब आते होंगे और मेरे दिमाग़ में है ख्यालों का बवंडर। क्या कहूँगी मैं उनसे और कैसे कहूँगी? .. और जो मैं कहूँगी, वे सुन पायेंगे? आंटी तो जैसे बुझ जायेंगी। जावेद को मैंने कभी नहीं देखा। उसे मैं नहीं जानती। कल्पना में है उसकी तस्वीर। उसकी आवाज़ भी मेरे कानों में गूंज रही है , 'अम्मी, मैंने कहा था न कि सरकारें जो कहती हैं, करती नहीं। कुंद छुरी से हलाल होने, हम यहाँ क्यों आये हैं?'

मैं सर से पाँव तक काँप जाती हूँ .. कागज़ के टुकड़े नहीं हैं ये लोग .. जीते, जागते इंसान हैं ... जीती जागती सच्चाइयाँ।

कमला आंटी और योगी से आमने-सामने तो बात होगी नहीं। जब भी कहना है, जो भी कहना है, फ़ोन पर कहना है। लेकिन कब और कैसे? फ़ोन पर दिया गया अपना कल वाला फ़रेब 'अंकल ज़रूर आ जायेंगे' मैं कब तक पालूंगी? कब और कैसे उन्हें बताऊँगी कि ब्रजेश चावला अब इस दुनिया में नहीं हैं। वे कभी नहीं आयेंगे।

इसी उधेड़-बुन में घबराई सी आँखें मूंदे कुर्सी पर पीठ लगाए बैठी सोच रही हूँ। माथा, पसीने से तर- बतर है। मैं पसीना पोंछती हूँ। मुझे अभी एक और फ़रेब गढ़ना पड़ेगा। एक सरकारी फार्मूला है मेरे पास...वही चलेगा। फ़ॉर्मूला पुराना है, मगर है ज़बरदस्त। हमारे दफ्तरों में इसे 'स्लो पॉयज़निंग' भी कहते हैं।

मैं फ़ोन उठाती हूँ --

''रिशेप्निस्ट ?''

''यस, मेडम ।''

''पाँच बजे मिसेज़ रश्मि चावला और मिस्टर जावेद क़ुरैशी मुझसे मिलने आएँगे ।''

''मैडम, दोनों यहाँ खड़े हैं। आपके पास भेज दूँ?

''नहीं, कह दो मैं उनसे नहीं मिल सकती। उनका मामला विचारधीन है।''

किन फ़रेबों में जी रही हूँ मैं!

तेरा क्या होगा, नीलिमा खरे? ये सच्चाइयाँ और तेरे झूठ! इनमें घिरी अपने झूठों के साथ तू भी चक्की के दो पाटों में फँसी बैठी है।

*

कहानी

समांतर

भावना सक्सैना

भावना सक्सैना

भावना सक्सैना भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग में कार्यरत हैं। साढ़े तीन वर्ष सूरीनाम स्थित भारत के राजदूतावास में अताशे (हिन्दी व संस्कृति) पद पर प्रतिनियुक्त रहकर वहाँ हिंदी प्रचार प्रसार किया। आपके प्रोत्साहन से सूरीनाम के हिन्दी लेखकों में नव-ऊर्जा का संचार हुआ। आपने "सूरीनाम में हिन्दुस्तानी, भाषा, साहित्य व संस्कृति" नामक पुस्तक लिखी है और सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था द्वारा प्रकाशित प्रथम कविता संग्रह 'एक बाग के फूल' और कवि श्री देवानंद शिवराज के कविता संग्रह "अभिलाषा" का संपादन किया। समय समय पर लेख, कविता व कहानी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं।

bhawnavsaxena@gmail.com

बरसों से खुल कर हँसा नहीं हूँ मैं, यदा-कदा कर्त्तव्य स्वरूप मुस्कुराहट ज़रूर आ जाती है।

कहा जाता है मैं अवसाद का शिकार हूँ। यूरोप के एक बड़े से शहर के अनेक डॉक्टरों ने मेरा हर संभाव इलाज किया किन्तु मेरी उदासी की घटाओं पर कोई सुनहरा किनारा दिखाई नहीं दिया। मैं अपना हृदय किसी के समक्ष खोल नहीं सकता, सभ्य समाज का प्राणी हूँ। किन्तु आज के समाचार-पत्र में छपे एक आलेख ने मुझे अंदर तक झकझोर दिया - आलेख था - "फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी" हज़ारों मील दूर एक देश के वासियों की गाथा जिन्होंने अपनी संस्कृति अपनी भाषा को जीवित रखा। उनका दिल हिन्दुस्तानी है, हाँ बस दिल ही तो! ऐसे दिल से मैं टकरा गया था बरसों पहले.... विश्वविद्यालय में दूर देश से आई परी सी एक लड़की... कहती थी अमरीका से, पर पहनती थी साड़ी! जब हमारी हमउम्र लड़कियाँ चौड़े पाएंचों वाली बेलबौटम और कसे हुए ब्लाउज, बड़े फूलों वाली मैक्सी व काफ्तान के साथ नव प्रयोग कर रही थी और उनकी आधुनिकता प्लैटफ़ार्म हील्स पर अपना नियंत्रण बैठा रही थी, सादगी की उस प्रतिमा पर मैं दिल हार गया था।

मैं अर्थशास्त्र एम ए फ़ाइनल का छात्र था और वह प्रथम वर्ष की। वरिष्ठ होने के नाते औपचारिक सा परिचय हुआ.... उन दिनों आज की तरह रैगिंग नहीं होती थी पर सीनियर छात्र आने वाले नए विद्यार्थियों के लिए स्वागत आयोजन करते थे, सभी नवागंतुकों को अपना परिचय देना होता था। ऊंचा जूड़ा बनाए, साड़ी में लिपटी उस फूल सी किन्तु सकुचाई लड़की ने बताया कि वह दक्षिण अमरीका के एक देश से आई है जहाँ हिन्दुस्तानी काफी संख्या में हैं, पूर्वी हिन्दी का पुट लिए उसके लहजे से लगा कि बिहार के किसी ग्राम क्षेत्र से है, वैसे भी उस समय हमें लगता था कि अमरीका से आने वाली लड़कियाँ पूरब पश्चिम की सायरा बानो सी ही होंगी जिन्हें सुधारने के लिए एक 'भारत' की ज़रूरत होगी और हम सब वह भारत बनने का ख्वाब देखते थे किन्तु यहाँ हमारे समक्ष थी एक अभिजात उच्च कुल की किन्तु अमरीका में जन्मी प्रगति जिसके पिता किसी परियोजना पर विदेश गए और वहीं बस गए। प्रगति का जन्म व 22 वर्ष तक की परवरिश अवश्य विदेश में हुई किन्तु उसके रोम-रोम में भारतीयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। हैरत सी हुई सुन कर कि वह स्नान किए बिना कुछ खाती पीती नहीं थी, स्नान करके, प्रार्थना करने के बाद ही वह पहला निवाला मुँह में डालती थी। यहाँ तो हर युवा अंग्रेज़ियत के रंग में रंगा जा रहा था, बैड-टी के बिना सुबह न होती थी। हम भी चाचा को देख देख बिना दाँत माँजे चाय पीकर अपने को अँग्रेज़ समझने लगे थे, किंतु प्रगति को देख आत्मावलोकन किया और सुधरे!!! माँ इस परिवर्तन को समझ न पाईं।

प्रगति से प्रत्यक्ष पहचान न भी बढ़ती यदि प्रोफेसर साहब ने एक रोज़ कक्षा के बाद बुला कर पढ़ाई में उसकी मदद करने को न कहा होता। परीक्षाएँ नज़दीक आ गईं थी, हम एक साथ बैठकर पढ़ते थे, कभी कभी अन्य दोस्त भी शामिल हो

जाते थे, नोट्स का आदान प्रदान आम था, फ़ाइनल वर्ष के छात्र जूनियर छात्रों को प्रश्नपत्र गैस-पेपर आदि देते रहते थे। यदा कदा कैंटीन व लॉन में बैठ साथ अध्ययन भी करते थे। धीरे धीरे अध्ययन की अवधि बढ़ती गयी और फिर अध्ययन के साथ साथ अन्य बातों के लिए समय निकलने लगा था। सप्ताह में एक बार थिएटर व बाहर खाने का खर्च प्रगति के जेबखर्च से निकल आता था। पश्चिमी संस्कृति की यह बात मुझे हमेशा से बहुत पसंद रही कि जेबखर्च नाम की सुविधा बहुत कम आयु से ही शुरू हो जाती है। किंतु वह उन दिनों की सोच थी जब मैं जेबखर्च लेने वाले पाले में था। एक आम इंसान की यही तो विडंबना है कि उसका आचरण उसके पाले से निर्धारित होता है, वक्त ज़रूरत के अनुसार विचार भी बदलते रहते हैं, मान्यताएँ भी..... खैर!

परीक्षा के बाद लगभग तीन माह का अवकाश था। कॉलेज बंद होने से पहले, प्रगति ने बताया वह छुट्टियों में वापस चली जाएगी..... मुझे जैसे किसी ने ज़ोर से धक्का दिया हो, मैं आसमान में विचर रहा था, ज़मीन पर आ पड़ा..... लगा वह स्वप्न की भांति खो न जाये। स्वप्न जो कहाँ कहाँ ले जाते हैं और फिर आँख खुलते ही ला पटकते हैं निर्मम जग की कठोर भूमि पर, जहाँ पनपने को कभी मिट्टी तो कभी जल कम रहता है और यह दोनों पर्याप्त मात्रा में हों तो जाने कितनी खरपतवारें आपका अस्तित्व लीलने को तैयार खड़ी रहती हैं। उस दिन कुछ खाया न गया, लगता था मानो कुछ बहुत व्यक्तिगत छूट रहा हो, घर पर माँ से यह बात छिप न सकी थी, माँ से वैसे भी कुछ छिपता कहाँ है? किन्तु समय ऐसा भी न था कि बच्चे माता-पिता से इतना खुले हों, लिहाज होता था और दिल की बातें सिर्फ मित्रों के समक्ष ही रखी जाती थीं। विवाह आदि भी माता-पिता की इच्छा से ही होते थे, फिर भी माँ के सामने अपनी व्यथा रखी तो मेरी बात पूरी होने पर वह पहले से और अधिक चिंता में दिखाई देने लगी। माँ ने कुछ न कहा, बाबू से बात करूंगी कह कर उठ गईं, मैं माँ को देख रहा था, लगता था जैसे भीतर ही भीतर किसी से लड़ रहीं हों लेकिन बाहर का आवरण कुछ मालूम न होने देता था, स्पष्ट था जिस बात से वह स्वयं संतुष्ट न हों बाबू के सामने कैसे रखें। बाबू थे भी बड़े सख्त, पक्के चोटी वाले ब्राह्मण जो बाहर किसी के हाथ का पानी भी नहीं पीते थे। और सबसे कठिन बात यह थी कि मुझे प्रगति के अलावा प्रगति के बारे में कुछ मालूम नहीं था। बस मालूम था कि वह मुझे बहुत अच्छी लगती है, मैं उसके आसपास रहने में अपने को पूर्ण समझता हूँ!

दो दिन तक माँ कुछ न बोली, उसके अंतर में एक गहन विमर्श चल ही रहा था, कि हमारे मामा जी पधारे; माँ के जुड़वा भाई, उनके बहुत निकट थी माँ, जो बाबू से न कह पाती मामा से खुल कर कह देती, और मामा जी से गहन विमर्श के बाद माँ शांत दिखाई दीं, जैसे कि राह मिल गयी हो।

यह तो बहुत बाद में पता चला कि उस रोज़ माँ की आँख में एक सपना आँज दिया था मामा ने..... विदेश का सपना!!! वह सपना जो उन्होंने एक रोज़ देखा तो था पर उसे पंख न मिल सके थे। माँ ने प्रगति को घर बुलाया और उसके बाद तो उन्हें कोई संशय ही न रहा। मामाजी ने एक बंद लिफाफा प्रगति को पकड़ाकर विदा किया....उसमें बंद संदेश का अंदाज़ा हम सब को था।

प्रगति की वापसी पर उसके माता-पिताजी साथ आये थे, उनकी दिली ख्वाहिश थी कि प्रगति भारत में विवाह करे और यहीं रह जाए, यही कारण था कि वह मामा की पुकार पर दौड़े चले आये । और फिर तुरत फुरत न जाने कैसे सब संपन्न हो गया, उसकी पढ़ाई का एक वर्ष बचा था और मैं नौकरी करने लगा था। यूनिवर्सिटी के पास ही हमने एक छोटा सा घर किराए पर ले लिया था क्योंकि बाबूजी का मानना था की मुझे अब अपनी गृहस्थी का बोझ स्वयं उठाना चाहिए। यह पहला अवसर था प्रगति को निकट से जानने का। कुछ घंटे मिलना और चौबीसों घंटे साथ रहने का अंतर सामने आने लगा, आवरण के भीतर की बारीकियां दिखाई देने लगीं। किंतु हम आदर्शवादी थे.....

और फिर जब प्रगति की परीक्षाएँ समाप्त हुईं तो हमने छुट्टियों में कन्याकुमारी घूमने का कार्यक्रम बनाया किन्तु मामाजी व माँ की राय थी कि हम प्रगति के माँ बाबूजी के पास चले जाएँ, उसका मन बहल जाएगा और मुझे उन्हें जानने का अवसर मिलेगा। छोटी सी गृहस्थी बस ही तो रही थी, लम्बे समय के लिए छुट्टी की अर्जी नामंजूर हो गयी तो माँ ने त्यागपत्र देने का हौसला बढ़ाया। चलते चलते मामा ने कहा था, अगर कोई अच्छा अवसर मिले तो हाथ से न निकलने देना, और प्रगति की ओर देखते हुए बोले थे - ''बहू अपने बाबू से कहकर बबुआ का काम कहीं ठीक करा दीजो नहीं तो तुम्हें अपने माई-बाप से दूर रहना पड़ेगा!'' माँ व मामा के सपने व प्रगति की खुशी के आगे मेरी इच्छा... योजना कुछ व्यक्त ही न हो पाई। बहुत ठगा सा अनुभव किया मैंने। किंतु मामा के शब्दों से प्रगति को संबल मिला, ससुराल पहुँचते ही प्रस्ताव मिला कि मैं बाबूजी के कारोबार में हाथ बंटाऊँ, लेकिन मैं अपने बूते पर कुछ करना चाहता था, मुझे बहुत आराम से वहाँ के विश्वविद्यालय में नौकरी मिल गयी और तब मैं खुलकर साँस लेने लगा। ज़िन्दगी दौड़ने लगी,नए नए फूल खिले, बगिया महकने लगी, सब कुछ व्यवस्थित था किन्तु प्रगति के अंतस में एक बेचैनी थी जिसे मैं महसूस करता था जैसे किसी चिड़िया को पिंजरे में डाल दिया हो।

प्रगति के बड़े भैया अपने व्यवसाय को बढ़ाना चाहते थे और पास के ही एक द्वीप पर नया कार्यालय खोला था प्रगति वहाँ जाकर हाथ बँटाना चाहती थी, तीन बच्चों के साथ विस्थापित होना खेल नहीं था। नए स्थान पर स्वयं को स्थापित करने की जद्दोजहद हम दोनों समझते थे, मगर प्रगति ने शायद अपने नाम को सार्थक करने की ठान ली थी। मैंने कभी उसे किसी बात से रोका नहीं था, मेरी मौन सहमति पा प्रगति ने सब व्यवस्था कर ली और मैं मूक उसका साथ देता गया। अब तक प्रगति का हर रूप निरख चुका था और जिंदगी से समझौता कर लिया था। यूँ हमारे व्यक्तित्वों की टकराहट कभी नहीं हुई। जो टकराहट हुई थी वह अपने अंर्तद्वन्द्वों की थी दो संस्कृतियों के दैनंदिन अंतरों की थी। अनुभव से सीखा कि हमारे आकलन सतही होते हैं, अक्सर यह आकलन प्रकट विचारों का होता है। अलग परिवेश में रहने से उपजी आदतें जो जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाती हैं उन पर किसी का ध्यान नहीं जाता। सामंजस्य बिठाना तब तक सही लगता है जब तक उन सामंजस्यों से जीवन मूल्यों का ह्रास न हो। जब यही सामंजस्य जीवन मूल्यों पर हावी होने लगते हैं तो लगता है आपकी जड़ें काटी जा रही हैं।

कैरेबीयन संस्कृति भारतीय संस्कृति से बिलकुल

भिन्न है, खाओ पियो मौज करो का सिद्धान्त लिए जीने वाले लोगों में हिन्दुस्तानी समाज ऐसा है जो प्रत्यक्षत: अपनी जड़ों से गहरा तो जुड़ा है किन्तु पश्चिमी परिवेश में रहने के कारण उसमें इस कदर ढल गया है कि तीन वक्त तो क्या दो वक़्त का खाना पकाना भी मुश्किल लगता है। टीनबंद खाना खाकर यूँ तो लोग ज़िन्दगी भी गुज़ार लेते हैं और उसमें कुछ बुराई भी नहीं है किन्तु यदि ताज़े पके खाने की कमी महसूस करना और वह प्राप्त न होने पर स्वयं पकाने की कोशिश करना और उसी प्रक्रिया में बीते समय की खिलखिलाती रसोई में जा पहुँचना और उसे अपने आसपास न पा कर उदासी से भर जाना यदि अवसाद है तो इसका आरंभ विवाह के कुछ वर्षों बाद ही हो गया था किंतु हम उसे पहचानना नहीं चाहते थे। आखिर हम एक संभ्रांत परिवार थे.....शिक्षित, सभ्य..... विवाद से दूर!!!

अरूबा एक बहुत सुंदर स्थान है किंतु वहाँ मेरे लिए उपयुक्त अवसर न थे सो मैंने घर पर रहकर बच्चों की ज़िम्मेदारी सहर्ष स्वीकार कर ली। ज़िंदगी फिर सामान्य हो चली थी मुझे घर रहने में कोई संकोच न था क्यूंकि मैं समझता था कि बच्चों को माता अथवा पिता किसी एक के निरंतर साथ की आवश्यकता होती है। माता पिता यदि दोस्त की भूमिका में सही बैठ पायें तो यह उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। बच्चे बड़े हो रहे थे और मैं उनका दोस्त बन रहा था। मेरे घर रहने से प्रगति पूर्ण रूप से स्वतंत्र थी...सही कहूँ तो जीवन में आनंद आने लगा था। ऐसे ही एक दिन हल्के फुल्के अंदाज़ में प्रगति के घर लौटते ही हम चारों उससे मज़ाक करने लगे और बच्चे भारतीय भोजन की माँग कर बैठे..... प्रगति शायद थकी थी और अप्रत्याशित ढंग से चिढ़कर कुछ बहुत अप्रिय सा कह गई.....बच्चे तुरंत वहाँ से हट गए..... मैं हतप्रभ खड़ा रह गया..... उसके एक वाक्य ने हमारे बीच कई वर्षों की दूरी भर दी थी। वह दूरी जिसे हम प्रत्यक्ष होने से रोकते आ रहे थे अब प्रकट होने लगी थी...मेरी सहन शक्ति जवाब दे रही थी। मैंने मौन की राह पसंद की.....

धीरे धीरे मैं अजनबी सा होता गया, प्रगति से, अपने आप से....

बच्चे पढ़ने बाहर चले गए, मैं अकेला..... और अकेला होता चला गया.....दिल के शीशे में पड़ा बाल कभी साफ न हुआ। एक रोज़ रात्रि में तीव्र पीड़ा से आँख खुली, बहुत घुटन हो रही थी, सोचा खिड़की खोल दूँ, किंतु उठने की कोशिश में गिर गया, बचने के प्रयास में तिपाई से टकराया.....आवाज़ सुनकर प्रगति दौड़ी आई, मेरी हालत का अंदाज़ा लगते ही एम्बुलेंस को बुलाया। उसका अंदाज़ा सही था.....मेरा हृदय कमज़ोर हो गया था। बहुत दिन बाद प्रगति को अपने निकट, अपने लिए चिंतित पाया, लगता था वक्त ठहर जाए.....साँस रुक जाए...पर न उसे न रुकना था न रुकी। घर लौटे तो जैसे थे वैसे ही हो गए।

जीवन के पन्ने जब पलट जाते हैं तो मनचाही पंक्तियों को चाह कर भी पुन: पढ़ पाना संभव नहीं होता। परछाइयों तक पहुँच मुश्किल होती है। मैं माँ के घर आया था, यह देख क्षोभ हुआ कि घर माँ का न रहा था.....इतने बरसों में माँ स्वयं मेहमान हो गई थी जिसके प्रस्थान की सबको प्रतीक्षा थी। वक्त के फेर पर हैरान था.....पिछली बार बाबू की बरसी पर आना हुआ था, तब तक माँ का ज़ोर था....परेशान थी पर कमान थामे थी।

डॉक्टरों ने स्थान बदलने की सलाह दी थी..... क्रिसमस की छुट्टियों में बच्चे आए और सारी बात जानकर अपने साथ ले जाने की ज़िद करने लगे किंतु मैं अपना निर्णय ले चुका था और इस बार सब मेरी बात मान गए... सामान्यत: कहीं न जाने वाली प्रगति भी हम सबके साथ चलने को तैयार थी और पहली बार हम सब साथ भारत गए। बच्चों की ज़िद पर भारत भ्रमण का कार्यक्रम बनाया इक्कीस दिन भारत भ्रमण के बाद माँ के घर पहुँचे।

जीवन के पन्ने जब पलट जाते हैं तो मनचाही पंक्तियों को चाह कर भी पुन: पढ़ पाना संभव नहीं होता। परछाइयों तक पहुँच मुश्किल होती है। मैं माँ के घर आया था, यह देख क्षोभ हुआ कि घर माँ का न रहा था.....इतने बरसों में माँ स्वयं मेहमान हो गई थी जिसके प्रस्थान की सबको प्रतीक्षा थी। वक्त के फेर पर हैरान था.....पिछली बार बाबू की बरसी पर आना हुआ था, तब तक माँ का ज़ोर था....परेशान थी पर कमान थामे थी, धीरे धीरे शायद स्वयं ही सब छोड़ती चली गई होगी, आज अजीब हाल में थी... हर समय मुझे खोजती थी , यादों के बीहड़ में भटकती थी, अपनी काल्पनिक दुनिया में बाबू से लड़ती कि मुझे परदेस जाने से रोका क्यों नहीं? बरसों बाद जाना कि मुझे बाहर भेजने का अफसोस रहा था उसे!!! मैं सोचता रहा – हम में से किसी ने कुछ न पाया था! मैं उसे ऐसे न छोड़ सकता था, इस उम्र में देश से बाहर जाना न वह चाहती थी न मैं उसे उसकी मिट्टी से दूर करना चाहता था, सो माँ के पास रह गया..... बच्चे निराश हो प्रगति के साथ लौट गए।

माँ खुश थी, मैं खुश था, किंतु माँ वर्ष भर भी मेरे साथ न रह सकी। मुझे पता चला प्रगति अरूबा का काम समेट कर बच्चों के पास रहने लगी है, समझ न पाया कि क्या मेरे यहाँ रह जाने से वह अकेली हो गई होगी? काश व्यक्त किया होता उसने! पर मैं भी कहाँ कुछ कह पाया था कभी! भावनाओं को शब्द मिले नहीं और एक-दूसरे के मौन को हमने समझी नहीं!

माँ के जाने पर संवेदना का संक्षिप्त सा कार्ड भेजा था प्रगति ने, अस्वस्थता के कारण आ पाने में असमर्थता व्यक्त की थी। वक्त ने जो खाई बना दी थी हमारे बीच, समय के साथ गहराती गई। किसी ने भी कदम न बढ़ाया.....

अगले सप्ताह मेरी बड़ी बेटी का विवाह है.... मुझे निमंत्रण नहीं है, उन्हें डर है मैं अवसादग्रस्त कोई फसाद खड़ा न कर दूँ.....बेटी एक यूरोपीय से विवाह कर रही है, कुछ वर्षों से वह एक साथ रह भी रहें हैं, संबंध आजमाने के लिए!

मैं आहत हूँ किंतु उससे कहीं अधिक चिंतित हूँ, अपनी बेटी के लिए क्योंकि अपने जिए हुए अनुभव से मैं जानता हूँ कि दो देशों- दो विभिन्न परिस्थितियों में रहने वालों की संस्कृतियाँ समान्तर तो चल सकती हैं किन्तु उनका मेल बहुत मुश्किल है, बहुत- बहुत से बलिदान करने पड़ते हैं, स्व को होम करना पड़ता है और उनके आमेलन के प्रयास में ज़िंदगी होम करके कुछ हासिल नहीं।

*

कहानी

माई लिटिल ब्रदर इज जस्ट लाइक यू...

नीरा त्यागी

नीरा त्यागी

मिरांडा हाउस, दिल्ली यूनिवर्सिटी से विज्ञान में स्नातक. ब्रिटेन के सरकारी प्रोजेक्ट्स में मैनेजर की नौकरी

दो दशकों से अधिक ब्रिटेन में निवास, लिखना स्वयं के करीब और स्वयं को खोजने का प्रयास है भीतर की औरत का शब्दों के माध्यम से खुली हवा में ज़िंदा पल जीने की जिजीविषा ... लिखना सिर्फ आसमान और वजूद की तलाश नहीं, ज़मीन और जड़ों से जुड़ने का प्रयास भी...

प्रकाशित कृतियाँ- परिकथा, गर्भनाल, अरगला में प्रकाशित कहानियाँ और कविताएँ ..

काहे को ब्याहे बिदेस ब्लॉग पर भारत के अखबार हिन्दुस्तान, जनवाणी और दैनिक जागरण में चर्चा और रिव्यू।

संपर्क : neerat@gmail.com

दूसरे ही दिन से प्रेरणा को लगने लगा था..वो मासूम आँखे कुछ टटोलती हैं, खोजती हैं कुछ कहना चाहती हैं ...अक्सर उसने देखा सत्ताईस झुके सर पेन्सिल की नोक घुमा रहे होते... और रेचल पेन्सिल का टॉप मुँह में घुमाते हुए उसकी तरफ देख रही होती...और उससे नज़रें मिलते ही सर झुका पेन्सिल को कापी पर घुमाने लगती...कुछ मिनटों बाद फिर उसकी पेन्सिल मुँह में और आँखे उस पर चिपकी हुई....रेचल के रूखे, उलझे, सुनहरे, खुले बाल, नयी पत्ती के रंग की कच्ची नींद में जागी आँखे, कपास जैसे गाल पर नाख़ून से खिंची बैंजनी लकीर बिना बोले बहुत कुछ कह जाते और फ्राक पर स्पेगेटी, चाकलेट, दूध, कस्टर्ड, केचप के निशाँ उसके सुबह के ब्रेकफास्ट का या रात के डिनर का मेनू बता रहे होते...

यह स्कूल चार-पाँच हज़ार की आबादी वाले एक छोटे से गाँव रिपन में था, यह गाँव माइग्रेशन-इम्मीग्रेशन से अछूता था...तभी तो सड़क पर छोटे बच्चे और बूढ़े उसे पीछे मुड़-मुड़ कर देखते...बच्चे ऊँगली उठा अपने माँ -बाप से प्रश्न पूछते ''व्हाट इज देट रेड स्पोट आन हर फॉर हेड... इज इट ब्लड ? उसके कुछ बोलने से पहले ही उनके माँ-बाप उससे माफ़ी माँगते हुए उन्हें एलियन के सामने से खींच कर ले जाते.... प्रेरणा का मन होता पर्स में से पत्ता निकाल लाल खून की बूँद बच्चों के माथे पर चिपका दे... वह अक्सर सोचती उन छोटी-छोटी उँगलियों की जिज्ञासा, बड़े-बड़े हाथों ने क्या कह कर मिटाई होगी ...

बी एड् की ट्रेनिंग के अंतर्गत प्रेरणा को ऐसे ही गाँव के स्कूल में कक्षा एक की क्लास मिली थी... वह खुश थी... पहली क्लास के बच्चों में उसके अंग्रेज़ी के उच्चारण पर मुस्कुराने और हँसी उड़ाने का हौसला तो कम होगा... और यदि उड़ाया भी तो उनकी उम्र के अनुरूप झेंप और तकलीफ भी कम होगी...पर यहाँ मुस्कुराने की बारी उसकी थी उनका योर्कशायर का डायलेक्ट बस को बूस, वाटर को वोतर, कलर को कोलर.. यकाएक स्थानीय डायलेक्ट सिखाने को उसके अट्ठाईस शिक्षक....

ट्रेनिंग समाप्त होते ही, इन्नेर सिटी में, होविन्गम प्राइमरी स्कूल में उसने ज्वाइन किया था। जहाँ अश्वेत बच्चों के मुकाबले श्वेत बच्चे अल्पसंख्यक थे, जब पहले दिन रजिस्ट्रेशन के समय प्रेरणा ने एक भारतीय बच्चे को अंकुर कह कर बुलाया तो अंकुर सहित सभी हँस पड़े... और एक साथ बोले '' हिज़ नेम इज एंकर...मिस!'' अंकुर को एंकर बनाना बहुत आसान था किन्तु एंकर को अंकुर बनाने के लिए शिक्षक का अश्वेत होना ज़रूरी था... इसलिए तमाम कोशिशों के बावजूद वह एंकर बन कर ही अंकुरित होता रहा ... हरी का हैरी, अजय एजे और विजय वीजे बन कर... भारतीय मूल के बच्चों का नामकरण श्वेत शिक्षकों द्वारा होने के बाद माता-पिता उनका नया नाम गर्व से पुकारते थे... पेरंट्स इवनिंग में उसके मुँह से निकले सही नाम के उच्चारण को स्कूल द्वारा दिए गए नए नाम से सुधारने की कोशिश करते ... तब ट्रेनिंग के दौरान प्रोफ़ेसर वर्मा की कही बात दिमाग़ में घूम जाती ''हम आज़ाद हो गए हैं लेकिन हम भारतीयों के दिल आज़ाद नहीं हुए वो अभी भी कोलोनाज्ड हैं । एक बार उसी स्कूल में प्रोफ़ेसर वर्मा उसकी क्लास का निरीक्षण करने आई थी... स्कूल ख़त्म होने से पहले प्रिंसपल प्रोफ़ेसर वर्मा को हेलो करने आया और बात करते हुए उसका ध्यान प्लास्टिक के लेगो पीस जोड़-जोड़ कर बने हेलीकाप्टर पर गया उसकी टूटी पंखुड़ी की तरफ इशारा करते हुए बोला ''पता नहीं क्यों भारतीय मूल के बच्चे खिलौने बहुत तोड़ते हैं ''... मिसेज वर्मा ने हँस कर जवाब दिया ''मिस्टर लीच भारतीय बच्चों को खिलौनों की रीसेलेबल वेल्यू नहीं मालूम, उनके माता-पिता खिलौनों की पेकिंग संभाल कर नहीं रखते... उन्हें तोड़ने और संभाल कर रखने का निर्णय उनका खुद का होता है...'' आफिस के बाहर कोई इंतज़ार कर रहा है यह कह कर मिस्टर लीच ने विदा ली...उस दिन के बाद से उसके द्वारा किये गए किताबों, खिलौनों और एजुकेशनल एड्स के आर्डर पर मिस्टर लीच ने अन्य शिक्षकों की तरह उससे भी प्रश्न करना बंद कर दिया...

होविन्गम प्राइमरी स्कूल में पेरंट्स इवनिंग का होना उसे एक नाटक सा लगा करता, स्कूल के

बाद साढ़े तीन बजे पेरेंट्स इविंग शुरू होती और चार बजे तक अधिकतर टीचर्स दस-बारह अभिभावकों से निपट लेती और बाद में एक दूसरे से बतिया कर खुश होती किस के पास कम से कम पेरेंट्स आये ...उसकी क्लास के पेरेंट्स की लाइन को देख, उसकी नाकाबिलियत पर सिर्फ मुस्कुरा अँगुलियों में गाड़ी की चाबी घुमा, बाय-बाय कहती निकल जाती... आधे से अधिक अभिभावक आते ही नहीं, जो आते उनके लिए शिक्षक ने जो बच्चे के बारे में कहा उससे अधिक जो नहीं कहा उसे समझने की ज़्यादा आवश्यकता थी, ''यास्मीन इज ए वंडरफुल गर्ल, इट्ज़ ए प्लेज़र टू टीच हर ... शी इज गुड इन मेथ्स बट इफ शी वर्क हार्ड लिटिल बिट इन इंग्लिश शी विल डू वेल ....'' यह लीपा-पोती भाषा अच्छे पढ़े लिखे माँ - बाप की समझ से बाहर है पहले दो वाक्य सुन कर तो माता-पिता फूल कर कुप्पा हो जाते और बाद के दो वाक्यों का मतलब यह कभी नहीं लगा सके कि यास्मीन गणित में औसत है और अंग्रेज़ी में कमज़ोर ...वैसे भी क्या फर्क पड़ता है यहाँ प्राइमरी स्कूल में कोई फेल नहीं होता... गर्मियों की छुट्टी छह सप्ताह की जगह अपने देश जाकर छह महीने बढ़ा लेने पर भी बच्चे अगली क्लास में चले जाते हैं... इन स्कूलों में न केवल बच्चों को बस्ते, पानी की बोतल और लंच बाक्स के भार से मुक्त रखा जाता है उन्हें उम्मीदों, अपेक्षाओं और प्रतिस्पर्धा जब प्रिंसिपल के कहने पर उसने माइकल की सालाना रिपोर्ट बदलने से इन्कार किया तो उसी समय उसे मालूम हो गया था, कांट्रेक्ट की उम्र अब इसी टर्म तक है, प्रिंसिपल ने कहा माइकल की माँ ने तीन स्कूल बदलने के बाद बड़ी उम्मीद से हमारे स्कूल में उसे दाखिल करवाया है वो हमारी स्कूल गवर्नर है... बड़ी निराश होगी... माइकल की रिपोर्ट बनाते समय प्रेरणा खुद से कहीं अधिक निराश थी, माइकल को उसने एक चुनौती की तरह अपनाया था, उपलब्धि और प्रतिस्पर्धा का स्वाद चखाने के लिए उसके हर छोटे कदम को सीढ़ी के ऊपर खड़े होकर दिखाने की कोशिश की और क्लास से बाहर उदंडता से बचाए रखने के लिए, वह उसका हाथ ऐसे थामे रहती जैसे खो जाने के डर से भीड़ में माँ अपने बच्चे का हाथ थामे रहती है... माइकल के आलसीपन को

यह लीपा-पोती भाषा अच्छे पढ़े लिखे माँ -बाप की समझ से बाहर है पहले दो वाक्य सुन कर तो माता-पिता फूल कर कुप्पा हो जाते और बाद के दो वाक्यों का मतलब यह कभी नहीं लगा सके कि यास्मीन गणित में औसत है और अंग्रेज़ी में कमज़ोर ...वैसे भी क्या फर्क पड़ता है यहाँ प्राइमरी स्कूल में कोई फेल नहीं होता... गर्मियों की छुट्टी छह सप्ताह की जगह अपने देश जाकर छह महीने बढ़ा लेने पर भी बच्चे अगली क्लास में चले जाते हैं...

रिवार्ड करने का अर्थ उसके भविष्य से खिलवाड़ करना, जिसके लिए वह खुद को राज़ी नहीं कर सकी... इसलिए स्कूल और माइकल दोनों को छोड़ना निश्चित था ...

रिपन गाँव के प्राइमरी स्कूल की दूसरी क्लास के बच्चों के बीच प्रेरणा उन्हीं की तरह रंगहीन और हो गई है। उन सफ़ेद चेहरों की मासूम आँखों को अभी तक यही मालूम है रंग सिर्फ रेनबो, फूलों और कपड़ों का होता है जिस दिन वो इंसानियत को काले-सफ़ेद रंगों का लिबास पहना देंगे ..उस दिन वो बच्चे नहीं रहेंगे ... क्लास में तो वह अक्सर भूल जाती है। स्टाफरूम में उसे अपनी चमड़ी का रंग और गहरा नज़र आने लगता है... उनके मज़ाक और गासिप उसके सर से गुज़र जाते ... कभी बालों से नीचे उतरे तो वह उसे भद्दे और बेस्वाद लगे ...वो उनकी बात पर ना हँसने पर प्रेरणा को समझाने के लिए ऊँचा बोलते ...वह बनावटी हँसी-हँसती ... कुछ बोलने को होती तो... जीभ तालू से चिपक जाती ...वह स्टाफ रूम में उन दिनों बहुत ज़्यादा मुस्कुराया करती ... सोशली एक्सेप्ट होने लिए नया मुखौटा पहनना सीख लिया...

उसकी प्लेग्राउंड में ड्यूटी है। आज टर्म का आखरी दिन है। रेचल और प्रेरणा का भी स्कूल में आज आखरी दिन है ... रेचल के माता-पिता ने घर बदला है उसे पास के स्कूल में भेज रहे हैं...और प्रेरणा ने करियर बदलने का निर्णय ले लिया है...प्ले ग्राउंड में धमा-चौकड़ी मची है बच्चे एक दूसरे के आगे-पीछे भाग रहे हैं... रेलिंग पर लटक रहे हैं... फ़ुटबाल उछाल रहे हैं, झपट रहे हैं ... फुटबाल पास करने के लिए चिल्ला रहे हैं, एक दूसरे को धक्के दे रहे हैं.. कुछ बार-बार उसके पास आकर एक- दूसरे की शिकायत लगा रहे हैं। लड़कियों के समूह स्टापू खेल रहा है और जब भी फ़ुटबाल उनके करीब आती है, वो उसे मैदान में वापस फेंक देती। प्रेरणा का ध्यान रेचल पर है जो उसे दूर खड़ी एकटक देख रही है....उसके उलझे सुनहरे बाल हवा में उड़ रहे हैं जिन्हें वो अँगुलियों से पकड़, गर्दन पीछे झुका, बार-बार कानों के पीछे उमेठती है... उसकी फ्राक पर चिपका डिनर और ब्रेकफास्ट का मेनू नीले मटमैले कोट से ढका है, जिसके दो बटन टूटे हैं... वह लालिपोप जिसे प्रेरणा ने घंटी बजने से पहले क्लास के बच्चों में बाँटा था...मुँह में डालती है और निकालती है। उसके गालों का रंग लालिपाप के रंग से मेल खा रहा है ... वह लालिपाप की डंडी को मुँह में दबाये दोनों हाथ हिलाती है, बीच की दूरी को नापती हुई वह प्ले ग्राउंड के दूसरे कोने से उसकी ओर भाग रही है... पास आकर हाँफते हुए प्रेरणा के कोट से बाहर लटके बर्फीले हाथ को चिपकी उँगली से छूते हुए रेचल के गुलाबी होंठ एक प्रार्थना सी बुदबुदाते हैं ''मिस माई लिटल ब्रदर इज जस्ट लाइक यू''.. प्रेरणा रेचल के दोनों हाथ अपने हाथों में ले, घुटने मोड़, झुक कर मुस्कुराते हुए रेचल की आँखों में उसके भाई के काले बाल और कत्थई आँखें खोजती है, लेकिन वहाँ उसे नज़र आती है स्वीकृति और आत्मीयता की लौ जिसको उसने बरसों से हर सफ़ेद चेहरे की आँखों में ढूँढा है ...

*

संस्मरण

साझा रिश्ता

शशि पाधा

रमेश से मेरी पहचान उस सैनिक छावनी में जाने के एक दो दिन बाद ही हो गयी थी। मेरे पति ने जिस दिन भारतीय सेना की स्पेशल फोर्सिस की एक इकाई के कमान अधिकारी का कार्य भार सम्भाला, उसी दिन से वो उनकी सिक्योरिटी गार्ड की टीम में नियुक्त हो गया। दिन भर जब मेरे पति ऑफिस में होते तो उसकी ड्यूटी भी वहीं होती और जब वे घर आते तो उनकी गाड़ी में भी उनकी सुरक्षा हेतु वे हमारे घर तक आता था। उसकी उम्र कोई २०-२१ वर्ष रही होगी। छह फुट लंबा, इकहरा शरीर और एक गर्व पूर्ण वीर सैनिक के भाव उसके चेहरे पर रहते। प्रति दिन मेरे पति के साथ आने-जाने के कारण इन दोनों की आपस में बातचीत होती रहती थी। एक दिन मेरे पति ने मुझे बताया कि रमेश हमारे शहर से थोड़ी ही दूर पहाड़ों पर बसे एक गाँव का रहने वाला है। अब कभी-कभी मैं भी उससे बात चीत करने लगी। क्योंकि वह मेरी ही भाषा बोलता था, मुझे उससे बात करने में भी अपनत्व लगता। कभी मैं उससे उसके माँ -पिता या कभी उसके गाँव आदि के बारे में पूछ लेती थी। एक कमान अधिकारी की पत्नी होने के नाते वैसे तो पूरी यूनिट ही हमारा वृहद् परिवार हो जाता है किन्तु जिन लोगों से रोज़ का मिलना जुलना होता है उनसे एक पारिवारिक रिश्ते से बन जाते हैं।

मेरे जीवन का एक यह पहला अवसर था कि मेरे बेटे मुझसे दूर अपने ननिहाल में पढ़ रहे थे क्योंकि जिस पहाड़ी छावनी में यह यूनिट थी वहाँ कोई बड़ा स्कूल नहीं था। मेरे लिए बच्चों को अपने नाना-नानी के पास छोड़ने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था क्योंकि बच्चे होस्टल में रह कर पढ़ना नहीं चाहते थे। मैं अपने बच्चों को बहुत याद करती थी। शायद यह भी एक विशेष कारण था कि रमेश मुझे अपने बेटों के समान ही लगता था।

एक-दो महीनों के बाद ही मेरे दोनों बेटे ग्रीष्मावकाश के होते ही हमारे पास आ गये। आते ही घर की रौनक बढ़ गयी। कई सैनिक उनके मित्र बन गये। किसी के साथ 'अंडर वाटर डाइविंग', किसी के साथ 'पर्वतारोहण', किसी के साथ क्रिकेट आदि खेल में लगे हुए मेरे बेटों की सब से गहरी दोस्ती हो गयी। अब उनका समय घर में कम और अन्य सैनिकों के साथ अधिक बीतता था। ऐसे ही खेल खेल में रमेश उनका अभिन्न मित्र बन गया। अब तो कहीं पिकनिक पर जाना है तो रमेश भैया भी साथ ही जाता था। हर शाम घर के लान में क्रिकेट की टीम खेलती थी तो बाकी सहायक दूसरी टीम में लेकिन रमेश भैया मेरे बेटों की टीम में होता था। मैं भी कभी-कभी दूर से उनका खेल देखती तो अपने इस सैनिक परिवार को देख कर आनन्दित हो जाती।

बहुत सी सैनिक छावनियाँ किसी बड़े शहर के पास होते हुए भी शहर से अलग -थलग ही होती हैं। रोज़मर्रा की आवश्यकताओं के लिए छावनी की परिधि के अन्दर ही कैंटीन, बनिये की दूकान, दर्जी, धोबी,नाई, छोटा सा स्कूल, सर्व धर्म स्थल आदि-आदि सादा जीवन जीने के सभी साधन होते हैं। छावनी के अन्दर एक अपना ही संसार होता है जहाँ किसी भी चीज़ की कमी नहीं लगती। हर रविवार को सभी सैनिक परिवार सर्व धर्म स्थल में एकत्रित हो कर प्रभु को याद करते हैं। हर त्योहार एक ही मैदान में एकत्र हो कर मनाया जाता है। वहाँ की चहल पहल भी बाकी नगरों से अलग ही होती है। सुबह का बिगुल बजते ही अधिकारी, जवान सभी पी.टी के लिए एकत्र हो जाते हैं। एक ही तरह की हरे रंग की गाड़ियाँ, एक ही तरह की हरे रंग की वर्दियां, एक ही तरह के घर। स्वच्छता इतनी कि स्वयं स्वच्छता हैरान हो जाए। कतार में खड़े पेड़ों के आस पास गेरू-चूना, छोटे- छोटे बाग़ बगीचे, खेल के मैदान, चिकित्सा कक्ष, नर्सरी स्कूल आदि-आदि जीवन जीने के सभी साधन अपने छोटे आकार में हर सैनिक छावनी को एक विशेष रूप देते हैं। हमारे सैनिक भिन्न -भिन्न प्रान्तों से आते हैं किन्तु सैनिक छावनियों में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का स्नेहिल वातावरण बना रहता है जिसमें पारस्परिक स्नेह और सौहार्द के आजीवन रिश्ते पलते-पनपते हैं।

ऐसे ही स्वर्गिक वातावरण में हम कुछ सैनिक परिवार सुखमय जीवन बिता रहे थे कि भारत के उत्तरी क्षेत्रों में आतंकवादियों की हिंसा की छुटपुट ख़बरें आने लगीं। कहीं आतंक फैलाने के लिए बस में निहत्थों की हत्या, कहीं सैलानियों को डराने के लिए गोलीबारी, कहीं आगजनी, कहीं लूटपाट की घटनाओं के कारण गाँधी के भारत में हिंसा, चिंता, भय और अविश्वास का वातावरण छा गया। युद्ध के समय बाहरी शत्रु से देश की रक्षा करने में प्रशिक्षित हमारे सैनिकों को देश के भीतर अलगाववादी तत्वों से लड़ने के लिए, भारतीय जनता की सुरक्षा के लिए और शांति स्थापना के लिए भारतीय सेना की कुछ इकाइयों को ऐसे स्थानों में भेजा जाने लगा जहाँ नगरों की पुलिस को विशेष सहायता की आवश्यकता थी। आज तक ऐसे समाचार हम टी.वी पर ही सुनते थे या समाचार पत्रों में ही पढ़ते थे कि इज़राइल में आतंकवादी हमला हुआ है या फिलिस्तीन में नागरिकों को बंदी बनाया गया है। भारत के पूर्वी क्षेत्र में भी अलगाववादी तत्त्वों द्वारा हिंसा की घटनायों के समाचार आते रहते थे किन्तु चिंता की बात यह थी कि देश के उत्तरी -पश्चिमी प्रान्तों में भी अब आतंकवाद का दैत्य सीमा पार के देश से घुस कर आ गया था जिससे पूरे भारत की शान्ति भंग हो गयी थी।

मेरे पति की यूनिट को भी चरमपंथियों के ठिकानों को नष्ट करने के लिए विभिन्न प्रान्तों में भेजने का निर्णय भारतीय सरकार ने लिया। निर्धारित दिन आने पर भोर के झुटपुटे में जीप, जोंगा ट्रक आदि की कतारें छावनी की मैदान से अपने लक्ष्यपूर्ति की दिशा में चल पडीं। हम सब परिवारों ने उन्हें बड़े उत्साह के साथ विदा किया। यह कोई सीमा पर युद्ध तो था नहीं। अनुमान यही था कि गुमराह हुए आतंकवादियों के ठिकानों को नष्ट करके, प्रान्तों में शान्ति स्थापित करके हमारी सेनाएँ शीघ्र ही लौटेंगी। किन्तु स्थिति ऐसी नहीं थी। जिनका सामना करना था वो सीमा पार से पूरी तरह से प्रशिक्षण लेकर आए थे। सीमा पर होने वाले युद्ध में और घर में घुसे आतंकवादियों के साथ मुठभेड़ में धरती आसमान का अंतर होता है। ऐसी लड़ाई अधिक जोखिम होती है क्योंकि कौन शत्रु है कौन मित्र , इसकी पहचान करना कठिन हो जाता है। जैसे कि अनुमान था कि हमारे सैनिक जल्दी लौट आयेंगे , वैसा नहीं हुआ। इस पूरे अभियान में कई दिन, कई वर्ष लगे और भारतीय सेना के अनगिन शूरवीरों ने अपने प्राण उत्सर्ग किये।

अनुमान यही था कि गुमराह हुए आतंकवादियों के ठिकानों को नष्ट करके, प्रान्तों में शान्ति स्थापित करके हमारी सेनायें शीघ्र ही वापिस लौटेंगी। किन्तु स्थिति ऐसी नहीं थी। जिनका सामना करना था वो सीमा पार से पूरी तरह से प्रशिक्षण लेकर आए थे। सीमा पर होने वाले युद्ध में और घर में घुसे आतंकवादियों के साथ मुठभेड़ में धरती आसमान का अंतर होता है। ऐसी लड़ाई अधिक जोखिम होती है क्योंकि कौन शत्रु है कौन मित्र , इसकी पहचान करना कठिन हो जाता है। जैसे कि अनुमान था कि हमारे सैनिक जल्दी लौट आयेंगे , वैसा नहीं हुआ। इस पूरे अभियान में कई दिन, कई वर्ष लगे।

ऐसे ही एक अभियान के लिए मेरे पति की यूनिट की एक टीम के साथ रमेश भी गया। मेरे पति जब घर के गेट के बाहर गाड़ी में बैठने लगे तो मेरे दोनों बेटों ने रमेश को गले लगा लिया। उनका दोस्त पता नहीं कितने दिनों के लिए जा रहा था। उसने मेरे पाँव छूकर आशीर्वाद लिया। इस तरह वीर सैनिकों का कारवाँ भारत भूमि में शान्ति स्थापना हेतु अपने गंतव्य की ओर चला गया।

भारत की उत्तरी सीमा से सटे पहाड़ों में जिस स्थान पर आतंकवादियों का जमाव था, वहाँ से कुछ ही दूरी पर हमारी पलटन की इस टीम का कैम्प लग गया। जाते ही सूचना मिली कि सीमा रेखा के पास एक जंगल में आतंकवादियों का गिरोह छिपा हुआ था। वो किसी भी समय शहर के महत्त्वपूर्ण ठिकानों पर हमला करके या आम जनता पर गोलियां दाग कर शहर में दहशत का वातावरण फैलाने के लिए पूरी तरह तैयार थे। उन दिनों इस क्षेत्र में ऐसी घटनाएं बहुत दिनों से घट रहीं थीं। हमारी सैनिक टीम को आदेश था कि उन आतंकवादियों के ठिकाने को नष्ट कर लिया जाए तथा उन्हें शस्त्र-विहीन कर दिया जाये ताकि उस प्रांत की शान्ति बनी रहे। युद्धस्थल में शत्रु को पकड़ने या उसे परास्त करने के अपने विशेष तरीके होते हैं किन्तु जंगलों में छिपे शत्रु पर वार करने के लिए बहुत हिम्मत, जोश, तथा विशेष ट्रेनिंग की आवश्यकता होती है, जिसमें हमारी पलटन के वीर जवान पूरी तरह से प्रशिक्षित थे।

अत: जैसे ही उन्हें आदेश मिला, रात के अंधियारे में पलटन की एक टीम ने आतंकवादियों के कैम्प के आस पास घेरा डाल दिया और उनके ठिकानों को नष्ट करने के लिए के लिए जंगल में कारवाई शुरू की। वहाँ छिपे आतंकवादी भी हर समय जवाबी हमले के लिए तैयार बैठे थे। जैसे ही हमारे जवान उन की ओर बढ़ रहे थे, उन्होंने वहाँ जमा किए घातक हथियारों से हमारे जवानों पर गोलियां दागनी शुरू कर दीं। क्यूंकि यह आतंकवादी बहुत दिनों से वहाँ रह रहे थे,उन्हें उस जंगल के आस पास का पूरा ज्ञान था । वे घने पेड़ों की आड़ लेकर हमारे जवानों पर घातक प्रहार करने लगे। दोनों ओर से काफी देर तक लड़ाई चलती रही । अंतत: कहीं पर ग्रनेड फ़ेंक कर, कही गोलियां दाग कर, कहीं पिस्तौल के अचूक निशानों से तथा कहीं गुत्थमगुत्था युद्ध में हमारे शूरवीर सैनिकों ने आतंकवादियों को पूरी तरह नष्ट करने में सफलता प्राप्त की । रात के अँधेरे में ही अपने ध्येय की प्राप्ति से पूर्णतय: संतुष्ट होकर हमारे जवान उस स्थान से कुछ दूर जंगल में बनाए पूर्वनिश्चित स्थान पर लौट आए। ऐसे अभियान में कार्यसिद्धि के बाद सैनिकों की गिनती करने का नियम है ताकि पता चले कि इस मिशन में जितने सैनिक गए थे, सभी सकुशल लौट के आए हैं कि नहीं, तो पता चला कि एक सैनिक नहीं लौटा था। शायद वो अधिक घायल हो गया था और वहाँ से निकल नहीं पाया, या पता नहीं।

जैसे ही उसे ढूँढने का आदेश हुआ, शूरवीर रमेश आतंकवादियों के उस गढ़ में अपने पीछे छूटे साथी को ढूँढ लाने के लिए तैयार हो गया । यह बहुत ही बहादुरी और साहस का निर्णय था। एक और जवान भी उसके साथ भेजा गया ताकि दोनों एक -दूसरे की सहायता कर सकें । थोड़ी ही देर पहले जहाँ आतंकवादियों के साथ घमासान युद्ध हुआ था, वहाँ ढूँढते- ढूँढते रमेश ने अपने साथी को पूरी तरह बेहोश अवस्था में पड़े देखा। जैसे ही रमेश ने अपने साथी को उठाया, वहाँ छिपे हुए किसी घायल आतंकवादी ने रमेश पर बन्दूक से गोलियां दागनी शुरू कर दीं । रमेश ने बड़े साहस और धैर्य से अपने साथी को बचाते हुए आतंकवादी पर जवाबी कार्यवाई की। वो आतंकवादी पर तब तक वार करता रहा जब तक वो पूरी तरह से नष्ट नहीं हो गया । अपने घायल साथी को कंधे पर उठाये रमेश सुरक्षित स्थान पर लौट आया । इस आमने- सामने की लड़ाई में वो बुरी तरह से घायल हो चुका था तथा उसके शरीर से बहुत मात्रा में रक्त बह गया था । वहाँ बैठे चिकित्सा कर्मियों ने उसे बचाने का भरपूर प्रयत्न किया किन्तु कुछ क्षणों के बाद ही वो शूरवीर अपने साथियों के बीच में पहुँचते ही शहीद हो गया ।

मुझे जब यह समाचार मिला तो बहुत आन्तरिक कष्ट हुआ। मेरे दोनों बेटे भी अर्दली के कमरे में रखी उसकी चीज़ों को देख -देख कर बहुत दुखी रहने लगे । ऐसे समय में प्रभु से प्रार्थना ही एकमात्र सम्बल रह जाता है। हम सब अब प्रतिदिन भगवान के आगे बैठ कर बाकी सैनिकों के सकुशल लौटने की प्रार्थना करने लगे। यूनिट की ओर से तो रमेश

के परिवार को उसके इस बलिदान की सूचना पहुँचाई गयी थी, मैंने स्वयं रमेश की माँ को उसके बहादुर बेटे के अदम्य साहस तथा शूरवीरता के लिए अपनी सेना की ओर से धन्यवाद भरा एक पत्र लिखा। उसी वर्ष रमेश को उसकी उत्कृष्ट वीरता के लिए भारत के राष्ट्रपति की ओर से शौर्य चक्र से सम्मानित किया गया। यह सम्मान गणतंत्र दिवस पर राजधानी देहली में उसके माता पिता ने ग्रहण किया ।

कुछ दिनों बाद मुझे जम्मू जाना था । मैंने रमेश के माता- पिता को सूचित किया कि मैं उनसे मिलना चाहती हूँ। उसका गाँव सुदूर पहाड़ों में था। मैं पूरे रास्ते यही सोचती रही कि कैसे उसके माता पिता का सामना करूँगी ? जैसे ही मैं वहाँ पहुँची, मैंने उसके माता पिता से रमेश की बहादुरी की बातें जो मैंने अपने पति से सुनीं थी, सुनाईं । मैं अपने साथ रमेश की कुछ तस्वीरें ले गयी थी जिसमें वो मेरे बच्चों के साथ खेल रहा था, मेरे पति के आफिस के काम काज में था और कहीं पर पलटन के मनोरंजन के कार्यक्रमों में कुछ प्रस्तुत कर रहा था । उन तस्वीरों को गाँव के लोग बड़े चाव से देखते रहे और उस वीर शहीद की बातें बड़े गर्व से सुन रहे थे । किन्तु शायद एक माँ का हृदय अपने बच्चे के बारे में कुछ और भी जानना चाहता था। वो अब तक बिना कुछ बोले अपने आँसुओं को चुपचाप अपनी ओढ़नी के छोर से पोंछ कर अपना अथाह दु:ख छिपा रही थी। मैं भी बहुत कठिनाई से अपनी रुलाई रोक पा रही थी । आखिर उस सैनिक छावनी में तो मैं उसकी माँ समान ही थी। हम दोनों ही कुछ देर बस चुप सी थीं। अचानक रमेश की माँ ने मेरे पास आकर, धीमे से मेरा हाथ पकड़ कर मुझसे पूछा, ''मेम साब जी, आपने उसे आख़िरी बार कब देखा था?''

मैंने कहा, ''जब वो साहब के साथ गाड़ी में बैठने लगा था। उसने हाथ जोड़ कर मुझे प्रणाम किया था और मेरे दोनों बेटों के गले लग कर हँसते-हँसते गया था।'' मैं और किन शब्दों से उसे सांत्वना दे सकती थी । मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था। बस यही कहा कि उसका बहादुर बेटा वीरता, त्याग और बलिदान का सर्वोच्च पाठ पढ़ा गया।

मुझे लगा कि वो मुझसे कुछ और पूछना चाहती है । उसकी मन:स्थिति को भांपते हुए मैंने उसका हाथ थाम लिया और कहा, ''अंतिम समय में हमारे साहब रमेश के पास ही थे।'' यह सुन कर वो कुछ देर मेरी और यूँ देखती रही मानो मेरी आँखों में अपने बेटे के अंतिम क्षण टटोल रही हो। जैसे ही मैं जाने को मुड़ी, वो कस कर मेरे गले लग गई । फिर रूँधी आवाज़ में उसने केवल यह कहा, "'मेम साब जी, आज मैं अपने बेटे से मिल ली।''

उसके आँसुओं से मेरा अंतर्मन भीग गया था। हम दोनों बस एक दूसरे के गले लगे रहे। रमेश की माँ के साथ मेरा साझा रिश्ता जो था। बहुत देर तक गहन संवेदना की नदी नि:शब्द बहती रही ।

*

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें । अपनी सामग्री यूनीकोड फॉण्ट में टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें । पीडीएफ़ या जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें । रचना के साथ पूरा नाम व पता, ई मेल आदि लिखा होना ज़रूरी है । आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र भी अवश्य भेजें । पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक के आवरण का चित्र अवश्य भेजें ।

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

'For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt'

Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.

Life Membership: $200.00

Donation: $

Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क
(भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

डॉ.प्रीत अरोड़ा

विदेशों में लिखी जा रही कहानियों में यथार्थ और अलगाव के द्वंद्व

समाज में जो कुछ घटित होता है। साहित्यकार की लेखनी में वह कैद होता जाता है क्योंकि साहित्यकार भी अपने परिवेश से प्रभावित होता है। ऐसे में वर्तमान समय में पैसे, मान-प्रतिष्ठा, अस्तित्वबोध व कैरियर आदि को लेकर अक्सर पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक व शैक्षिक क्षेत्र में यथार्थ और अलगाव से द्वंद्वात्मक स्थितियाँ स्वत: ही उत्पन्न हो जाती हैं। भारत से इतर देशों के साहित्यकार इन्हीं परिस्थितियों से रू-ब-रू होकर प्रवासी-जीवन के अनछुए पहलुओं को बेहद आत्मीय तरीके से अपनी कहानियों में वर्णित कर रहे हैं।

आधुनिक युग में व्यक्ति की अधिकार-सजगता ने उसकी स्थिति, मान्यताओं व संस्कारों को अत्यधिक प्रभावित किया है। उसके लिए प्राचीन मान्यताएँ बदल चुकी हैं। व्यक्ति अपने जीवन में किसी दूसरे का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता। ऐसे में अनेक लोग ऐसे भी मिल जाएँगे जिनके लिए विवाह संस्था से भी जुड़ी जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धों की भारतीय-कल्पना का कोई मूल्य नहीं रह जाता। भारतीय समाज की अपेक्षा विदेशी परिवेश में लिव-इन रिलेशनशिप, प्रेम-प्रसंग, विवाह-विच्छेद व पुनर्विवाह इत्यादि आसानी से स्वीकार किए जाते हैं। उदाहरणार्थ लेखिका उषा वर्मा की कहानी 'सलमा' एक ऐसी भारतीय नारी सलमा के जीवन की गाथा है, जो लंदन में विवाहोपरान्त अपने पति की उपेक्षाओं का शिकार होकर असुरक्षा की भावना और मानसिक द्वंद्व के चलते आत्महत्या करने की कोशिश करती है, परन्तु जल्दी ही वह सशक्त होकर अपने पति का परित्याग कर पुनर्विवाह के लिए रजामंद हो जाती है। उषा जी ने मानव-मन की जटिल मानसिकता, द्वंद्व को कथा कौशल की तूलिका से कैनवस पर उतारा है।

कई बार वैवाहिक संस्था के अंतर्गत पति - पत्नी द्वारा लिया गया सम्बन्ध-विच्छेद का निर्णय उनके बच्चों में अविश्वास व अपराधबोध की स्थिति पैदा कर देता है जो ताउम्र बाल -मन को भीतर ही भीतर कचोटता रहता है । माता-पिता के अहम् की टकराहटों का कुपरिणाम बच्चे भोगते हैं। लेखिका उषा राजे सक्सेना की कहानी डैडी भी इसी विषय पर आधारित है। माता-पिता के अलगाव से उत्पन्न मानसिक द्वंद्व से त्रस्त होती है उनकी बेटी; यद्यपि बेटी को अपने सौतेले पिता द्वारा भरपूर प्यार मिलता है तथापि उसके मन में एक ही सवाल कचोटता है कि आखिर उसके पिता ने उनसे नाता क्यों तोड़ा था? जिसके परिणामस्वरूप वह अपने जन्मदाता से मिलने का सपना लिए उनके घर जाती है परन्तु पिता की मृत्यु का पता लगने पर उसके मन में सवालों की गुत्थी अनसुलझी ही रह जाती है। कहानी में नायिका अतीत की धुँधली तस्वीर से पर्दा उठाना चाहती है परन्तु वर्तमान के नए रिश्तों का समीकरण लेकर लौटती है। लेखिका ने अतीत का पुनर्मूल्यांकन कर नए रिश्तों की तल्ख़ सच्चाई को स्वीकारा है।

डॉ.प्रीत अरोड़ा
मकान नम्बर 405, गुरूद्वारे के पीछे
दशमेश नगर, खरड़
जिला मोहाली, पँजाब-140301
फोन-08054617915
arorapreet366@gmail.com

आज भारत में लिखीं जा रही अधिकांश हिन्दी कहानियाँ यथार्थ के नाम पर केवल देह के भूगोल को देख रही हैं, जबकि प्रवासी कहानियाँ मानवीय यथार्थ के भीतर मूल्यों की तलाश करती नज़र आती है। भारतीय मानव-मन अपनी मातृभूमि व रिश्तों से अलग होकर विदेशी परिवेश में एडजस्ट नहीं हो पाते। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि भारत व विदेश की संस्कृति-सभ्यता व जीवन-शैली में अत्यधिक अन्तर है। वहाँ एक आकर्षण है। वहाँ की दुनिया कई बार स्वप्निल संसार भी रचती है। कहानीकार तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी कहानी 'अभिशप्त' के माध्यम से एक प्रवासी भारतीय के उपेक्षित जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया है, जो अपना सर्वस्व त्यागकर द्वंद्वात्मक स्थिति को झेलता है। रजनीकांत का भारत से लंदन जाना और वहाँ की सँस्कृति व परिवेश में स्वयं को मिसफिट पाना उसके जीवन का कटु सत्य बन जाता है। रजनीकांत और उसकी पत्नी निशा के सम्बन्ध कानूनी कटघरे में न जाकर एक ही छत के नीचे साँस लेते हैं। तेजेन्द्र जी ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि विदेशी परिवेश में वैवाहिक बन्धन व्यक्ति की अभिरुचि, इच्छा व दृष्टिकोण के अलग-अलग होने के कारण अप्रासंगिक हो जाते हैं। अपनों से विलग होकर असहनीय पीड़ा को व्यक्ति अन्दर ही अन्दर महसूस करता है और प्रत्येक स्थिति को नियति मानकर भोगने के अभिशप्त हो जाता है।

रिश्तों में यथार्थ और अलगाव के द्वंद्व के विषय में मैं लेखिका सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों हैं ?' का उल्लेख करना चाहूँगी, जिसका शीर्षक ही संबंधों में आ गई ठंडक का प्रतीक है। कई बार दाम्पत्य जीवन में कारण प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट नहीं होते पर वे रिश्तों में अपनत्व की गर्मी को समाप्त कर देते हैं। कारणों की अस्पष्टता से ही अक्सर दाम्पत्य जीवन में अलगाव की स्थिति पैदा हो जाती है। कारण जब वीभत्स रूप धारण कर सम्मुख खड़े होते हैं तो उस कटु यथार्थ को सहना असहनीय हो जाता है। संबंधों की ठंडक से पैदा हुआ अलगाव और यथार्थ से जूझती नायिका के द्वंद्व की संवेगात्मक अभिव्यक्ति है यह कहानी। कहानी की नायिका साक्षी अपने पति (शेखर) के पर पुरुष (जेम्स) से सम्बन्धों की कड़वी सच्चाई को स्वीकार कर तो लेती है परन्तु अर्न्तद्वंद्व की पीड़ा से जूझती है। जेम्स का शेखर को किसी अन्य पुरुष के लिए छोड़कर चले जाना शेखर को आत्महत्या करने के लिए मजबूर कर देता है। अन्तत: साक्षी के जीवन का यह कटु यथार्थ बन जाता है कि वह अमरीका में नितान्त अकेली व अजनबी की तरह प्रत्येक स्थिति को भोगने के लिए मजबूर हो जाती है-

'आज वह गौर से उस लकीर को ढूँढ़ रही है जिसने उसके भाग्य को अस्त कर दिया। हथेलियाँ उसे धुँधली-धुँधली दिखाई दे रही हैं ....लकीर साफ़ नज़र नहीं आ रही।' पर वह लकीरों की आस्था को परे कर यथार्थ को स्वीकार कर मज़बूती से खड़ी हो जाती है और यही लेखिका ने अंत में दिखाया है--'आँखों में उतर आई नमी को अन्दर

गटक लिया और होंठ भींच गए....न...अभी बहुत कुछ करना है.....'

नवीन जीवन की आंकाक्षा रखने वाला व्यक्ति अपने अस्तित्व का बोध स्वतंत्रता की अनुभूति में करता है। जहाँ उसकी अपनी महत्त्वकांक्षाओं के कारण सीमित दायरों की पकड़ ढीली हो जाती हैं। उसके कदम एक नई राह की ओर निकल पड़ते हैं परन्तु परिस्थितिवश वे नई राहें ही पारिवारिक सम्वेदना के वृत्त को तोड़ देती है और परिणामस्वरूप घर बिखर जाता है।

लेखिका अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'घर' में नायिका नादिरा द्वारा अपने पति के नीरस और उबाऊ रवैये के कारण होनहार पुत्र (सलीम) व पति को छोड़ देना सलीम के डाक्टर बनने के सपने को भंग कर देता है। लेखिका ने प्रवासी मन के द्वंद्व को दिखाने के लिए लेखकीय तटस्थता का प्रयोग किया है। जहाँ सलीम मनोचिकित्सक की सलाह पर चिड़ियाघर में नौकरी करके उसे ही अपना अशियाना बना लेता है। कहानी की अन्तिम पंक्तियाँ उसकी मार्मिक स्थिति को उजागर करती है – ''सलिल वही कार में बैठा देखता रहा। सलीम धीरे-धीरे पैर घसीटता हुआ, उस राख के शामियाने के नीचे जा रहा था-अपना घर।'' लेखिका ने कहानी में सलीम की दर्दनाक सम्वेदना को प्रस्तुत करने के लिए बाल-मनोविज्ञान की सूक्ष्म परतों की गहराई में उतरकर उन्हें जानने, समझने व विश्लेषित करने का सफल प्रयास किया है।

वर्तमान युग में अनेक मध्यवर्गीय भारतीय परिवारों द्वारा अपनी बेटियों की शादी किसी अप्रवासी भारतीय युवा से करने का चलन कटु यथार्थ है। ऐसे रिश्ते करना और उसको प्रचारित करके गौरव-बोध से भर जाना, इतराना, यही मानसिकता हो गई है। लेकिन अनेक रिश्तों की दुखान्तिकाएं भी सामने आती रही हैं। इला प्रसाद द्वारा रचित 'ग्रीन कार्ड' नामक कहानी इसी विषय को प्रतिपादित करती है। कहानी में सीमा नामक भारतीय नारी का विवाह अमरीका के समीर से होना अत्यंत हर्ष का विषय होता है परन्तु समीर का अमरीका अकेले वापस लौट जाना सीमा के हिस्से में प्रतीक्षा की घड़ियाँ छोड़ जाता है। ग्रीन कार्ड न मिलने पर समय और भाग्य भी सीमा का साथ छोड़ते नज़र आते हैं। लेखिका ने इस कहानी में मानव-मन के सुनहरे सपनों की उड़ान के कारण हृदय में होने वाली विचलन और उद्वेलन को वाणी दी है। कहानी की शुरुआत में वे लिखती हैं --

''अब हर दिन छुट्टी का दिन है, समय बेरहम है, अपनी गति से गुज़रता है।''

अन्त में यह कहना चाहूँगी कि विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य के अन्तर्गत कहानीकार पूरी ईमानदारी से आधुनिक समाज ख़ास कर भारतीय लोगों की सामाजिक, पारिवारिक समस्याओं का चित्रण करते हुए समाज की दशा व दिशा को सुधारने का अथक प्रयास कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप उनके द्वारा रचित साहित्य में हृदय को स्पर्श करने की क्षमता व मार्मिकता का विशेष रूप से समावेश है। यही कारण है कि इन कहानियों का ट्रीटमेंट आम हिन्दी कहानियों से बिलकुल अलहदा है। और बहुत हद तक आश्वस्त भी करता है कि ये कहानियाँ भारतीय मन को एक हद तक समझती हैं और उनके दर्द को, उनके हर्ष-विषाद को नया वैश्विक विस्तार देती हैं। यह भी कहा जा सकता है कि विदेश में लिखी जा रही लगभग हर हिन्दी कहानी, कहानी के उस ताप को भी बनाए रखती है, जिनकी कमी भारतीय हिन्दी लेखन में महसूस की जाती रही है।

*

ॐ भाषांतर ॐ

डॉ.जगतार: साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त पंजाबी कवि डॉ. जगतार जितना भारतीय पंजाब में प्रसिद्ध हैं, उससे कहीं ज़्यादा उन्हें पाकिस्तानी पंजाब में मान्यता दी जाती है।

अनुवाद: नव्यवेश नवराही

रिश्तों के पिंजरे

वह मेरे जिस्म के इस पार झांकी
उस पार झांकी
और कहने लगी,
तुम मेरे बाप जैसे भी नहीं
जो दारू की नदी तैर कर
डुबो देता है उदासी में घर सारा।
तुम मेरे पति जैसे भी नहीं
जो मेरी रूह तक पहुँचने से पहले ही
बदन में तैर कर
नींद में डूब जाता है।
तुम मेरे भाई जैसे भी नहीं
जो चाहता है
कि मैं बेरंग जीवन ही गुज़ारूं
मगर फिर भी
तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो।
मगर क्या नाम रखूँ इस रिश्ते का
मैंने जो रिश्ते जिए, पिंजरे हैं
या कब्रें हैं
या खंडहर हैं।
*

हैंडल विद केयर

मेरे यहाँ आने से पहले
वह कॉलेज में थी।
अब भी उसके जिस्म और माज़ी की खुशबू
इस तरह लगता है जैसे
हर जगह मौजूद है।
जो कभी फूलों से, कमरे से
कभी माहौल से आती रहती है।
इस तरह लगता है कभी कैंटीन में
कॉफी की उठ रही भांप में
उसका चेहरा बन रहा है
और कभी लगता है पीरियड समाप्त करके
आ रही है वो उदासी।
और कभी लगता है कि बारिश में
खंबे के साथ लगी
वह किसी का इंतज़ार कर रही है
(किसका?)
मेरी ज़िंदगी में वह जब हुई दाखिल
मैंने कभी पूछा ही नहीं था।
न ही मेरा है स्वभाव
क्योंकि इस तरह के सवालों से
औरत तिड़क जाती है हमेशा।
*

सिमरत गगन : समकालीन पंजाबी कविता में सिमरत गगन एक समर्थ नाम हैं। उनकी कविता औरत और मर्द को एक दूसरे के पूरक के तौर पर देखती है।

तीर्थ

आज मैं हर उस जगह पर तन्हा गई हूँ
जहाँ जहाँ कभी तुमने मेरे साथ
कदम से कदम मिलाकर
दूरियाँ नापी थीं
मेरे लिए वे सब जगहें,
अब तीर्थ हैं
जहाँ भगवान की मूर्ति की जगह
तुम्हारी याद स्थापित है
और मेरा काम क्या अब ?
सिर्फ आराधना
और मैंने बेध्यानी में ही
उन सब जगहों को चूम लिया
धूलि माथे पर लगा ली, सजदा कर लिया
तुम्हारा मेरा संयोग नहीं
अपने सितारे नहीं मिलते
पर फिर भी तुम्हारे ज़ेहन में
मैंने अपना याद पत्थर लगा दिया है
और यह शहर अब मेरा 'मक्का' हो गया
यहाँ मैंने तुम्हारी इबादत की है
और तुमने हर बार मंदिर में गऊ की
और मस्जिद में सुअर की हत्या की है
पर मेरी खामोश उल्फत ने तुम्हें
इस बार बचा लिया है
*

वो तारीख़

मैंने उस तारीख को अक्सर
लिख लिखकर सजदे किए हैं
जिस तारीख में तुम्हारे वजूद ने
मेरे अस्तित्व के एक एक अहसास को
छू लिया था
मैंने उसके बाद कभी आईने में
अपनी नज़र नहीं देखी
और मेरे गहरे कहीं तुम्हारी नज़र
धंसती चली गई
तुम्हें यकीन था
और मुझे हमारे एक होने पर शक
हाँ, हम एक थे, एक हैं
पर भविष्य पर हमारी हुकूमत
नहीं होगी
अहसासों के एक एक पन्ने पर
तुम्हारी याद के दस्तखत हैं
हमने इकट्ठे बैठकर कभी
ज़िंदगी की किताब नहीं खोली
पर अब तुम्हारे बिना मेरी किताब को
समाज की दीमक खा जायेगी
जिस दिन तुम लौटोगे
मुझ उस दिन का इंतज़ार है
और तब मुझे बताना
हम जुदा कब हुए थे
वो कौन-सी तारीख थी
*

साधना अग्रवाल

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' का अंतर्पाठ

साधना अग्रवाल
B-19 / F, दिल्ली पुलिस अपार्टमेंट्स
मयूर विहार फेज-1, दिल्ली-110091
मो0 -9891349058
agrawalsadhna2000@gmail.com

भारतीय मूल की कथा लेखिका सुधा ओम ढींगरा एक लंबे अरसे से अमेरिका में प्रवास कर रही हैं। हिन्दी साहित्य में उनकी रुचि है और कविता एवं कहानी लेखन में वे सक्रिय हैं। उनके कई कहानी एवं कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

उनकी कहानी 'सूरज क्यो निकलता है' को पढ़कर यदि लोकेल की बात छोड़ दी जाए तो यथार्थ का रंग भारतीय जीवन-समाज के परिवेश से गहरा मिलता है। कहानी की भाषा सशक्त है और यह कहानीकार की सफलता है कि अमेरिकी परिवेश के एक ऐसे यथार्थ से वे हमारा परिचय कराती हैं जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इस कहानी को पढ़कर मन पर एक बड़ा प्रभाव यह पड़ता है कि प्रवासी लेखकों द्वारा लिखी गई कहानियों का चेहरा समकालीन हिन्दी कहानीकारों से बिल्कुल मिलता-जुलता है।

सूरज पूरब में ही नहीं पश्चिम में भी निकलता है। पूरब वाले जानते हैं कि सूरज डूबता पश्चिम में है और पश्चिम वाले सूरज को पूरब में डूबते हुए देखते हैं। सूरज द्वारा दिशा बदलने से यथार्थ का रंग भी बदल जाता है। भारत और अमेरिका के यथार्थ में ज़मीन-आसमान का फर्क है। वहाँ की सरकार सिंगल पेरेंटस, खासकर माँ के 18 वर्ष की उम्र तक के बच्चों की परवरिश का ज़िम्मा उठाती है, जिसके कारण वे बच्चे निठल्ले और कामचोर हो जाते हैं। भारत की स्थिति बिल्कुल उलट है। यहाँ की सरकार को किसी के जीने-मरने की कोई चिंता नहीं और न ही अपने नागरिकों की कोई ज़िम्मेदारी ही है। यथार्थ के इन दोनों चेहरों में एक बड़ा अंतर्विरोध है। अमेरिका एक संपन्न राष्ट्र माना जाता है और भारत एक गरीब देश। लेकिन विडंबना की बात यह है कि संपन्न देश से भी सरकारी सुविधाओं के कारण वैसे ही नागरिक पैदा हो रहे हैं जैसे इस देश के। कारण स्पष्ट है सुखी जीवन जीने की महत्त्वाकांक्षा और लालसा। बस यदि कोई फर्क है तो यह कि वहाँ के निठल्ले-बेकार युवक भीख माँगते अमेरिका की मंदी को कोस रहे हैं, जबकि हमारे यहाँ के सुदूर निरक्षर, अशिक्षित, आदिवासी, ग़रीब मज़दूर को यह तक पता नहीं है कि हमारे देश का नाम क्या है और इसकी राजधानी कहाँ है?

आज के अधिकांश हिन्दी कहानीकारों, प्रवासी सहित को ठीक से यह बात नहीं मालूम कि कहानी में वे क्या लिख रहे हैं और क्यों लिख रहे हैं। आजकल हिन्दी में दो प्रवृत्तियां काफी सक्रिय हैं- कवियों द्वारा कहानियाँ लिखना और कहानीकारों द्वारा कविता में कहानी लिखना। दूसरी प्रवृत्ति है खूब लम्बी कहानियाँ लिखना। हम जानते हैं कि बड़े से बड़े उपन्यास चाहे वह टालस्टॉय का 'वार एंड पीस' हो, दोस्तयोवस्की का 'क्राइम इन पनिश मेंट' या फिर जां फ्लावेयर का 'अधूरा स्वप्न' या फिर छोटे से छोटा उपन्यास अर्नेस्ट हेमिंग्वे का 'द ओल्ड मैन एंड द सी' की कथावस्तु मुश्किल से दो पंक्तियों की होती है। कोई ज़रूरी नहीं कि हर मोटा उपन्यास क्लैसिक ही हो। यदि तालस्तॉय, दोस्तयोवस्की और जां फ्लावेयर के मोटे उपन्यास क्लैसिक बन गए तो इसका मुख्य कारण विषयवस्तु का घेरा है। जहाँ तक हैमिंग्वे के उपन्यास का सवाल है, यह उपन्यास बहुत छोटा यानी 100 पृष्ठों से भी कम है, लेकिन जिस विषय वस्तु को लेकर लिखा गया है, उसका सीधा सरोकार मनुष्य से है। हेमिंग्वे के उपन्यास के बूढ़े आदमी के सामने अछोर फैला समुद्र है और उसकी अदम्य जिजीविषा ही निरंतर उसे संघर्ष से जूझने की शक्ति देती है। मेरे कहने का आशय यह है कि जिस तरह मुक्तिबोध ने लिखा है-'कहीं भी कविता खत्म नहीं होती', उसी तरह न कोई कहानी और न उपन्यास खत्म होता है। बल्कि जीवन के बाद भी जीवन का सिलसिला चलता रहता है। इसी तरह यथार्थ देशकाल के अनुसार बदलता रहता है। प्रेमचंद के 'कफ़न' का यथार्थ और सुधा ओम ढींगरा की इस कहानी के यथार्थ में कितना फर्क है? स्वयं इस कहानी के बारे में लेखिका लिखती है-'यहाँ की गंदी बस्तियों में जाने का मौका मिला। ग़रीबी रेखा के नीचे वालों को मिलने वाली सरकारी सुविधाएँ लेते हुए पीढ़ी दर पीढ़ी निकम्मे, निठल्ले परिवार देखे। सुविधाओं का दुरुपयोग करते हुए चरित्र, कर्मयोग की धज्जियां उड़ाते, भौतिकवादी संस्कृति को अंगूठा दिखाते, निर्लिप्त, तटस्थ और बेलाग से अपनी एक दुनिया बसाए हुए, कठोर-कायदे कानून, अनुशासन और सरकारी तंत्र को ढीठता से नकारते हुए एक वर्ग में, प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' के पात्र घीसू और माधो का विश्व-व्यापी रूप पाया तो विचलित हो उठी, अंत:करण छीज गया। समृद्ध राष्ट्र के अंधेरे कोने भारत की अंधी गलियों की तरह ही भयावह हैं। भोजन के लिए मिले कूपन बेचकर शराब, सिगरेट और औरत का जुगाड़ करने वालों ने अंदर एक कोलाहल पैदा कर दिया। अकर्मण्यता के घिनौने रूप और विश्वव्यापी मानसिकता ने कहानी के बीज डाले और जिज्ञासा में इन्हीं बस्तियों की क्लबों को खंगालते हुए कहानी को खाद-पानी मिला।'

जब मैं यह कहानी पढ़ रही थी तो मुझे प्रेमचंद की चर्चित और विवादास्पद कहानी 'कफ़न' के कुछ प्रसंग याद आ रहे थे। लेकिन मैं समझ नहीं पा रही थी कि भारत के लगभग 75-80 वर्ष पहले का यथार्थ आज के अमेरिका का यथार्थ कैसे हो सकता है? यद्यपि इस कहानी में अमेरिकी नागरिकों को वहाँ की सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सुविधाओं का विस्तार में वर्णन है फिर भी इस कहानी के माध्यम से आप अमेरिका को कितना जान सकते हैं। बाद में जब मैंने सुधा ओम ढींगरा से संपर्क करके इस कहानी पर उनकी रचना-प्रक्रिया जाननी चाही तो मुझे अच्छा लगा कि उन्होंने प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' का संदर्भ दिया है। इससे मेरी धारणा की पुष्टि ही नहीं हुई बल्कि यह भी लगा कि पुराना यथार्थ एक विकसित और

संपन्न अमेरिका जैसे राष्ट्र का वर्तमान यथार्थ भी हो सकता है, देशकाल के फर्क और दूरी के बावजूद।

इस कहानी की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसका नैरेशन बहुत दिलचस्प ही नहीं लगता बल्कि कहानी के कहानीपन को अक्षुण्ण रखते हुए पाठकों की उत्सुकता बनाए रखता है। कहानी का आरंभ देखिए-'वे गत्ते का एक बड़ा सा टुकड़ा हाथ में लिए कड़कती धूप में बैठ गए, जहाँ कारें थोड़ी देर के लिए रुक कर आगे बढ़ जाती हैं। बिना नहाए-धोए, मैले-कुचैले कपड़ों में वे दयनीय शक्ल बनाए, गत्ते के टुकड़े को थामे हुए हैं, जिस पर लिखा है-''होम लेस, नीड योर हैल्प''। कारें आगे बढ़ती जा रही हैं, उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहा। ज्यों ही कारें रुकती हैं, वे गत्ते के टुकड़े को उनके सामने कर देते हैं, कुछ लोगों ने उन्हें गाली दी-'' बास्टर्ड, यू आर बर्डन आन द सोसाइटी।'' कुछ ने अपनी कार का शीशा नीचे करके कहा-''वाय यू गाईइ डोंट वर्क ?'' दोनों ढीठ हो चुके हैं, गालियाँ सुन कर चेहरा भावहीन ही रहता है और दोनों ऐसा अभिनय करते हैं कि जैसे उन्होंने कुछ सुना नहीं।''

जिस तरह यह कहानी आरंभ होती है और कार का शीशा उतारकर गत्ते के टुकड़े पर लिखी इबारत को पढ़कर अंग्रेज़ी में गालियाँ देकर कारें आगे बढ़ जाती हैं, उससे साफ पता चलता है कि विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी यह कहानी है। गत्ते पर जो लिखा है-' होम लेस, नीड योर हैल्प' से भी कुछ संकेत मिलता है कि अमेरिका में होम लेस लोगों के प्रति सहानुभूति है और इस भावनात्मक कमज़ोरी का कुछ लोग दुरुपयोग कर रहे हैं। वस्तुत: यह कहानी अमेरिका के एक वैसे शहर की कहानी है जिसके किसी छोर पर एक जर्जर खस्ताहाल मकान है। इस मकान का भी एक इतिहास है-इस बड़े परिवार में अविवाहित महिला टैरी और उसके माँ-बाप हैं। टैरी का काम है मौज-मस्ती करना, अमीर लोगों को फंसाना और ऐश करना। इस तरह वह 11 बच्चों को जन्म देती है, जिनका पालन-पोषण उसकी माँ करती है। माँ के स्वभाव, रहन-सहन और आदतों का परिणाम यह निकला कि बेटियाँ माँ के ही नक्शे कदमों पर चलती हुई, रोज पुरुष बदलती हैं और अविवाहिता माँएँ बनकर सरकारी भत्ता ले रही हैं। दो बेटे नशा बेचने वाले गिरोह में शामिल होकर न्यूयार्क चले गए। दो चोरी-डकैती में जेल में हैं, उनका जेल में आना-जाना लगा रहता है। एक बेटा किसी बिल्डर के साथ काम करता है और वह ही सही ढंग का निकला है। एक बेटे ने मैरुआना के पौधे घर के पिछवाड़े में उगा लिए थे और उसे स्कूल के बच्चों को बेचने लगा था। चूंकि अमेरिका में 18 वर्ष के होने तक बच्चों की ज़िम्मेदारी सरकार की होती है। टैरी की माँ उसे बराबर टोकती भी है लेकिन उसे मौज-मस्ती करने से फुर्सत कहाँ? इन 11 बच्चों में सबसे छोटे जुड़वां भाई पीटर और जेम्स हैं। शेष भाई जेल में हैं। ले-देकर एक भाई कुछ ठीक है और उसने भरपूर कोशिश की कि पीटर और जेम्स किसी अच्छे काम पर लग जाएँ ताकि ज़िन्दगी ठीक से गुजर-बसर कर सकें। लेकिन जेम्स और पीटर काहिल, कामचोर, निकम्मे और मुफ़्त की कमाई करने वाले निकले। अमेरिका में ऐसे लोगों को जो गरीबी रेखा से नीचे के हैं, उनके लिए शेल्टर होम और खाने के लिए, सरकार, कूपन उपलब्ध कराती है बल्कि कुछ स्वयं सेवी संस्थाएं भी मदद करती हैं। पीटर और जेम्स की समस्या यह है कि सरकार से खाने के कूपन तो उन्हें मिल जाते हैं लेकिन शराब और लड़की पाने के लिए उन्हें अतिरिक्त पैसों की आवश्यकता होती है जिसके लिए वे गत्ते का पोस्टर बनाकर भीख मांगते हैं, फिर भी उन्हें पर्याप्त डॉलर नहीं मिलते। मौज-मस्ती के लिए वे एक रास्ता निकालते हैं। मुफ्त के किचेन में खाना खाकर वे सरकारी कूपन बचा लेते हैं और फिर उन्हें आधे दाम में बेचकर शाम में एक क्लब में जाने की तैयारी करते हैं। अब उस पुराने घर के इतिहास को देखें, जहाँ स्थायी रूप से दो बहनें अपने तीन-तीन बच्चों के साथ रह रही हैं। इस घर में जब-तब भूले-भटके भाई आते-जाते रहते हैं। पीटर और जेम्स का भी इस घर में एक अलमारी में बंद ताले में कुछ सामान है -आयरिश स्प्रिंग साबुन, राईट गार्ड डीओडोरेंट, माउथ फ्रेशनर, प्रेस किए हुए कपड़े आदि। वे क्लब जाने की तैयारी खूब ज़ोर-शोर से करते हैं। नहा-धोकर एकदम फ्रैश, प्रेस किए हुए कपड़े, परफ्यूम, क्लीन शेव करके वे शाम में क्लब पहुँचते हैं। इस क्लब में बार भी है और रेस्तरां भी है। इन्हें देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि वे वही दोनों थे जो हाथ में गत्ता उठाए भीख मांगते हैं। क्लब का मुआइना करने के बाद वे बीयर का आर्डर देते हैं। गला तर होते ही उनकी नज़र दो खूबसूरत यौवन से मदमाती लड़कियों पर पड़ती है जिनके हाथ में वाईन के गिलास खाली हो चुके हैं। बैरे को बुलाकर वे संकेत से उन दोनों के गिलासों को भरने का आर्डर देते हैं। लड़कियाँ समझ जाती हैं और बाद में धन्यवाद देने के लिए उनके पास पहुँचती हैं। फिर उन लड़कियों-लौरा और सहरा के साथ वे डांस करने लगते हैं। शराब के नशे और स्त्री अंग के स्पर्श से उनमें कामोत्तेजना पैदा होती है। बीच में दोनों से संवाद होता है और बाद का कार्यक्रम वे निश्चित कर लेते हैं लेकिन दोनों लड़कियाँ वाशरूम के बहाने वहाँ से खिसक ही नहीं जाती हैं बल्कि उन दोनों की जेबों से पैसे निकाल लेती हैं। बाद में जो स्थिति उत्पन्न हुई, वह वीभत्स भी है और घिनौनी भी। वे और शराब पीते हैं और डांस करने लगते हैं। अंतत: सिक्योर्टी गार्ड्स उन्हें क्लब से बाहर निकाल कर एक कोने में छोड़ देता है।

रात बीतने के बाद और सुबह होने पर जब सूरज की रोशनी उन पर पड़ती है तो झल्ला कर कहते हैं-'सूरज क्यों निकलता है' क्योंकि वे गहरी तन्द्रा में थे। बाद में क्लब के सफ़ाई कर्मचारी उन्हें वहाँ से भगा देता है।

यह कहानी किंचित लंबी है लेकिन उबाऊ नहीं। कहानी की पठनीयता आरंभ से लेकर अंत तक बनी रहती है। यह सुधा ओम ढींगरा की एक वयस्क कहानी है जिसमें यथार्थ की अनेक परतें हैं। ऊपर से देखने पर यह कहानी किसी पाठक को सामान्य लग सकती है, लेकिन इस कहानी की रचना प्रक्रिया बहुत जटिल है; क्योंकि अमेरिका जैसे सम्पन्न आधुनिक तथाकथित सभ्य राष्ट्र के वर्तमान यथार्थ का घिनौना चेहरा है।

यह अकारण नहीं है कि यह कहानी हमारी स्मृतियों में देर तक टिकती है ; क्योंकि इसमें कहीं कोई वाग्जाल नहीं है। पूरी कहानी शुरु से आखिर तक संवाद में और विवरण में विश्वसनीयता लिए हुए हैं। पीटर और जेम्स दोनों के अपने-अपने तर्क हैं। वे अमेरिका की मंदी को इसलिए कोसते हैं कि उन्हें भीख में पर्याप्त डालर नहीं मिलते। और तो और काम न करने का उनका तर्क देखिए-'हमें दूसरे लोगों की तरह दो वक्त के भोजन के लिए काम कर-करके मरना-खपना नहीं है। वह तो हमें बिना काम किए ही मिल जाता है।' यह कहानी मुझे सचमुच अच्छी लगी, खासकर इसलिए कि इसे एक प्रवासी लेखिका ने लिखा है और बिल्कुल नए यथार्थ से परिचित कराया है।

(पुस्तक वार्ता से साभार)

*

सौरभ पाण्डेय

साधना है, योग है, व्यायाम है
घर चलाना घोर तप का नाम है

आज होगा दफ़्न कल की क़ब्र में
जानते हैं, पर मचा कुहराम है

थी मुलायम जिस वज़ह उसकी ज़ुबाँ
वो उसे अब दे रही इनआम है

भूख की सारी लड़ाई जिस लिए
पट गया चूहों.. वही गोदाम है

सोचता है बाप इस बाज़ार में
बच्चियों को क्या ख़बर क्या दाम है

झील है तू, रोज़ मत नज़दीक आ
एक पत्थर हूँ, मुझे इल्ज़ाम है

लोग जाने क्यों कहें खारा पहर
पास आ 'सौरभ' सुहानी शाम है

*

दिखा कर फ़ाइलों के आँकड़े अनुदान लेते हैं
वही पर्यावरण के नाम फिर सम्मान लेते हैं

निग़ाहें भेड़ियों के दाँत सी लोहू बुझी लेकिन
मुलायम भाव आँखों में लिये संज्ञान लेते हैं

हमें मालूम है औकात तेरी ऐ ज़माने पर
करें क्या बाप हैं, चुपचाप कहना मान लेते हैं

सलोने पाँव की थपथप, किलकती तोतली बोली
इसी सुर-ताल पे सब कुछ भुला, हम तान लेते हैं

पिशाची सोच के आगे उमीदें भी जिलाना क्या
भरे सिन्दूर जिसके नाम वो ही जान लेते हैं

इधर जम्हूरियत के ढंग से है मुल्क़ बेइज़्ज़त
उधर वो ताव से सिर काट इसकी शान लेते हैं

लुटेरे थे, लुटेरे हैं, ठगी दादागिरी से वो
कभी ईरान लेते हैं, कभी अफ़ग़ान लेते हैं

*

saurabh312@gmail.com

इस्मत ज़ैदी 'शेफ़ा'

गोरियाँ पनघट पे जाती हैं, अभी तक गाँव में
प्रीत की राहों के राही हैं, अभी तक गाँव में

पायलों से सुर मिलाती वो खनकती चूड़ियाँ
लोक धुन पर गुनगुनाती हैं, अभी तक गाँव में

झोपड़ी, खलिहान, पनघट, बाग़ में बिखरे हुए
याद के कुछ फूल बासी हैं, अभी तक गाँव में

छोड़ आए थे जिन्हें तुम गाँव के बरगद तले
झील सी आँखें वो प्यासी हैं, अभी तक गाँव में

क्या बुज़ुर्गों का है दर्जा? मान क्या सम्मान क्या?
माँएँ बच्चों को सिखाती हैं, अभी तक गाँव में

भूल कर भी अपनी मिट्टी को न भूलेगी 'शेफ़ा'
कुछ जड़ें गहरी समाई हैं, अभी तक गाँव में

*

दिल में बुग़्ज़ छिपा रक्खा है
मुँह पर नामे खुदा रक्खा है

कोई ना समझा उस ने दिल में
कितना दर्द छिपा रक्खा है

भाईचारा ख़त्म ना होगा
आस का दीप जला रक्खा है

बच्चों को बंदूक़ें दे कर
कैसा खेल सिखा रक्खा है

उस ने ख़ुद्दारी की ख़ातिर
ख़ुद से भी पर्दा रक्खा है

दिल में माज़ी की यादों का
रौशन एक दिया रक्खा है

शिकवे रंजिश भूल भी जाओ
इन बातों में क्या रक्खा है

दर्द किसी के ले कर देखो
तुम ने नाम 'शेफ़ा' रक्खा है

*

zaidiismat@gmail.com

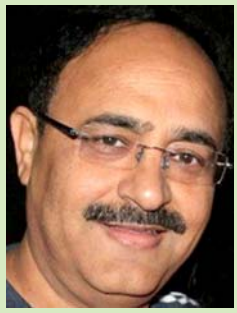

दिगंबर नासवा

मुझे ये ज़िंदगी मिलती है ऐसे
तेरी जुल्फ़ों का पेचो-ख़म हो जैसे

तेरी आँखों में आँसू आ गए थे
मैं तुझको छोड़ के जाता भी कैसे

फड़कती है नहीं बाजू किसी की
रगों में बह रहा है ख़ून वैसे

हवस इंसान की मिटती नहीं है
फकत पैसे ही पैसे और पैसे

तरक्की ले गयी अमराइयाँ सब
शजर ये रह गया जैसे का तैसे

*

जो भी आया सामने टपका दिया
जुर्म फ़ाइल में कहीं अटका दिया

बोलता था सच हमेशा से मगर
आईने को बीच से चटका दिया

जिस किसी ने बात की इन्साफ़ की
ज़ोर पे डंडे के फिर धमका दिया

मामला आया अदालत में अगर
न्याय की धाराओं में भटका दिया

आग से जो खेलने निकला कभी
विष जबरदस्ती उसे गटका दिया

सर उठाने की करी जो कोशिशें
मार कर फिर पेड़ से लटका दिया

उठ तो जाते लड़खड़ाते ही मगर
दोस्तों ने हाथ ही झटका दिया

सूफ़ियों से हो गए हैं आज हम
घर जो आया सामने खटका दिया

*

dnaswa@gmail.com

FAMILY DENTIST

Dr. N.C. Sharma
Dental Surgeon

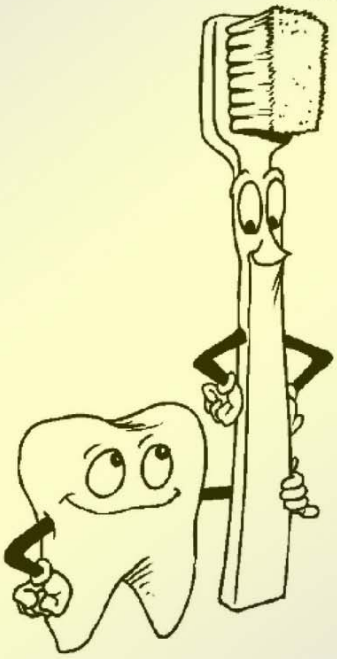

Dr. C. Ram Goyal
Family Dentist

Dr. Narula Jatinder
Family Dentist

Dr. Kiran Arora
Family Dentist

Call us at: 416-222-5718

1100 Sheppard Avenue East, Suite 211, Toronto, Ontario M2K 2W1 Fax: 416-222-9777

शकुंतला बहादुर की कविताएँ

लखनऊ (भारत) में जन्म। लखनऊ विश्वविद्यालय से संस्कृत में सर्वप्रथम एवं जर्मन भाषा में डिप्लोमा। जर्मन एकेडेमिक एक्सचेंज सर्विस की फ़ेलोशिप पर ट्यूबिंगेन यूनिवर्सिटी(जर्मनी) में दो वर्षों तक वैदिक साहित्य में शोधकार्य एवं वहीं हिन्दी, संस्कृत का अध्यापन। भारत में 36 वर्षों तक लखनऊ विश्वविद्यालय एवं संबद्ध पी.जी.कॉलेज में प्राचार्या पद से सेवा-निवृत। विगत चौदह वर्षों से कैलिफ़ोर्निया में निवास।कविताएँ और लेख भारत एवं अमेरिका की पत्रिकाओं में प्रकाशित। कविता, संस्मरण एवं ललित निबन्धों की पाँच पुस्तकें प्रकाशित।

आत्मीय

भारत (स्वदेश) से दूर,
अपनों से दूर,
सुदूर विदेश में
दूर के संबंध
फिर से जुड़ जाते हैं।
दूरियों को दूर कर,
सब पास आ जाते हैं।
अनजाने में ही,
अनजाने भी,
अपने बन जाते हैं।
अपरिचित भी तो तब
परिचित ही नहीं,
आत्मीय से लगते हैं,
और...मन की उदासी में-
हर्ष भर जाते हैं॥

*

एक अनुभूति

अपनों से दूर-अपनों के पास
मन में कुछ उदासी है,और कुछ हुलास है।
अपनों के प्यार की,और ही कुछ बात है॥
किसी को खोकर ही ,किसी को पाना है।
पाने और खोने का,रिश्ता ये पुराना है॥
एक लहर आती है, दूर चली जाती है।
सुधियों की सरिता में,मन को डुबा जाती है॥
अपनों ने विदा दी,अपने हैं प्रतीक्षा में।
हर्ष और विषाद के, भाव भरे हैं मन में॥
अपनों से बिछड़ना है, अपनों से मिलना है।
भविष्य की भूमि में, सपनों को बोना है॥
साँस एक आती है,उम्र घटा जाती है।
साँस चली जाती है,उम्र चली जाती है॥
रिश्तों के आपसी,घात-प्रतिघात में।
कटुता की गठरी स्नेह-सिन्धु में डुबोना है॥
अपनापन सँजोना और बिखरने से बचाना है।
क्योंकि बनी बात भी बन के बिगड़ जाती है॥
जीवन की राह में, आशा की बाती है।
प्रिय-जन की बात मन-सुमन खिला जाती है॥

*

उधेड़-बुन

सलाइयों पर कुछ फन्दे डाल,
मैं बिनती रही, बिनती ही रही।
कभी कुछ घटाती,
कभी कुछ बढ़ाती,
कभी कुछ गिराती,
कभी कुछ उठाती,
कभी उधेड़ देती
और फिर से बिन लेती ।
बिनाई को आकार देने के प्रयास में-
बार बार भूलें सुधारती रही,
निरन्तर यत्न से जुटी रही,
बिनती रही,
बिनती ही रही॥
तभी मन में
बिजली सी कौंध गई,
और.....पल भर को
मैं विचारों में खो गई।
समय की सलाइयों पर,
पलों के फन्दों को,
हम निरन्तर
बिनते ही तो रहते हैं।
कभी कुछ गिराते,
कभी कुछ उठाते हैं,
कुछ याद करते
और कुछ बिसराते हैं,
अतीत को उधेड़ते
और भविष्य को बुनते हैं।
कभी कुछ घटाते
और कभी कुछ बढ़ाते हैं॥
कभी
कोई पूरा जीवन बिन जाता है,
तो किसी का
अधूरा छूट जाता है।
इसी उधेड़-बुन में
सारा जीवन बीत जाता है॥

*

shakunbahadur@yahoo.com

कविताएँ

स्त्री तुम और वह

रश्मि प्रभा

तुम्हें टुकड़े कीमती लगे
जिसने टुकड़े फेंके थे
तुमने उसके सजदे में अपना ईमान गँवा दिया !
आँसुओं से धुंधले पड़े ज़मीन से
वह अपने बच्चों के लिए टुकड़े उठाती गई
तुमने अपने ठहाकों में
उसकी हिचकियों को बेरहमी से मार दिया
अपने सड़े -गले तराज़ू पर
तुम एक माँ की परिस्थितियों का हिसाब-किताब
और न्याय करते गए !
उस माँ ने आँख उठाकर
हिकारत से भी किसी को देखना
अपने स्वत्व के खिलाफ माना
और तुम सब हर रोज़
उसकी हार का तमाशा देखने को बेताब रहे !!
इतने कुत्सित चेहरों के मध्य भी
जो जीना चाहे
नयी जान की साँसों के लिए
उसकी हार कभी नहीं होती
उसकी खामोश सिसकियाँ
'हाय' बन जाती हैं
देखते-देखते उसकी धरती हरी हो जाती है
और तुम्हारा सब कुछ सोने की लंका के समान
जलकर राख हो जाता है !!!
कमज़ोर काया में अडिग क्षमता होती है
आज नहीं तो कल
उसकी निरीह दिखती हास्यास्पद लगती खुद्दारी
स्वाभिमान के असंख्य दीप जलाती है...
अभी भी समय है सोचो
वह ऊपर वाला मौके देता है
जो टुकड़े फेंकने का तुम्हें अभिमान है
वह तुम्हारा नहीं उसका है
वह जब देता है
तो तुम्हें आजमाता भी है
भक्ति में देवत्व है या नहीं
यह आकलन उसका होता है !!!

*

संवाद

पूनम कसलीवाल

चल रहा संवाद
दादा और पोते के बीच,
दोनों थे बैठे पार्क के बेंच पर,
पोते की थीं मासूम शिकायतें
दादाजी की थी हामी बस,
'मुझे कोई प्यार नहीं करता,
सब धौंस जमाते हैं
छोटा जान
अपनी मर्जी चलवाते हैं।'
'मुझसे भी बूढ़ा हूँ न।'
'बताना मत किसीको
कल बिस्तर के नीचे
मैं छुप रोया था।'
'नहीं, बिलकुल नहीं,
तेरा साथ मैंने ऊपर दिया था।'
'एक राज़ की बात,
आप कहना न किसी से..
मुझे नीम पर लटका वो भूत,
दीदी जिसका नाम ले धमकाती,
वही रह-रह सताता है,
और बिस्तर गीला हो जाता है।'
'नहीं-नहीं बिलकुल नहीं,
मेरे साथ भी अक्सर हो जाता है,
वो वृद्धाश्रम
याद आ जाता है,
जिसका नाम,
आजकल
बातों में सुना जाता है ....'

*

गीले भीगे गीत

सुधा राजे

स्वर्ण भोर हीर की दोपहर
मदिर सुरमई शाम,
मणि मन चन्दन तन
घन कुंतल सब तेरे घनश्याम
मुक्त अश्रु, हास नवरतनी
छीजे पद्म-राग रस चुनरी,
मूंगे अधर, फटिक नख-शिख ये,
नयन दीप कंचन तव डगरी
किन्तु कहाँ तुम जहाँ
भेज दूँ सारावली सन्देश,
तिर्यक् चन्द्र चन्द्रिका सिसके,
गीले तुहिन प्रदेश
पीर प्रतीक्षा, शीत वादियाँ,
श्वेत ठिठुरती प्रीत,
आश हिमालय, हिम-ही-हिम
गूँजे विरहा का गीत
कस्तूरी मृग प्रणय न खोजे
प्रिय परिमल का स्रोत
गह्वर गहन छिपा निर्जन वन
तनहा मिलन कपोत
कहीं दूर बिछुड़ा पंछी
पिऊ करता छाती चीर
कुहू गूँजता सन्नाटे में
किसे पुकारे कीर ??
अनजाने अनगिन प्रवास पर
वय यायावर हाय,
साँवरी सुधि हुई निपट बावरी,
साँवरिया ना आए .....

*

कविताएँ

डॉगवुड का पेड़

रेखा मैत्र

सफ़ेद छाते सा तना
डॉगवुड का ये दरख़्त
अक्सर मुझे बुलाता
हालात की कड़ी धूप से
छुटकारा दिलाता सा!
कैसे इसे समझाऊँ
कि इसकी बिरल छाया
दो पल को भी
मेरे सर को तापस से
नहीं बचा पायेगी!
इसकी चार पंखुड़ियों वाले
हँसते- खिलखिलाते फूल
मेरी बात समझ ही नहीं पाते
बुलाते ही जाते, बुलाते ही जाते....!

*

प्रेम की विडम्बनाएँ

पंखुरी सिन्हा

कि कहीं देख न रहा हो,
आइसक्रीम की तरह,
यूँ जमते पिघलते,
वो दूर से मुझे,
मेरे कमरे की बेतक़्लुफी में,
मुझे,
हाँ, मुझे ही,
अलग किसी को नहीं,
गुनगुनाते उसकी बातें,
लपेटते आलिंगन उसका,
हवा मिठाई की मुसमुसी मिठास की तरह,
यूँ पिघली पिघली ठंढी मिठास की तरह,
स्ट्रॉबेरी फ्लेवर्ड, गुलाबी रंग की तरह,
कैसी कृत्रिमता मुझे घेरे है?
इश्तहारों की तरह,
प्यार में अत्याचार भी होते हैं,
बहुत ढेर सारे।

*

वेद प्रकाश 'वटुक' की दो कविताएँ

हर धर्म-युद्ध में

हर धर्म-युद्ध में
विजय राम की होती है
पर मुक्ति रावण को मिलती है
और राज्य प्राप्त होता है विभीषणों को
रही सत्य की सीता
उसे मिलेगी अग्नि-परीक्षा
वनवास
और धरती में समा जाना।

*

वनवास से लौटने पर

वनवास से लौटने पर लोग
सीता पर उँगली उठाते हैं
और राम से राजसूय यज्ञ करते हैं
सीता धरती में समाती है
और राम सरयू में
एक बार वनवास भोग कर
कोई घर नहीं लौटता है !

*

वसंत अनन्त

कैलाश चन्द्र भटनागर

रे ! मन, कहाँ ढूँढ़ता है वसंत अनन्त
गृहस्थ आश्रम में खिलाए कितने सुमन
अनेकों रंगों से सजाया जीवन
पर यह तो है, क्षणिक ऋतु, फागुन वसंत
कहाँ, ढूँढता है वसंत अनन्त ।
जीवन का रथ, पग पग चलता
आयु का पथ - पल-पल घटता
बता तो, तेरा अनन्त कहाँ है
कहाँ ढूँढ़ता है वसंत अनन्त।
रे मन! पाऊँ कहाँ छिपा अनंत
भटका बहुत, पर मिला नहीं अनंत
अब घर आ रे, साँझ हो गयी
कहाँ, ढूँढ़ता है वसंत अनंत।
रे मन ! झाँका भीतर,
तो पाया, हृदय में बसा वसंत आहा!
यही तो है, वह चिर, अक्षय वसंत
कहाँ, ढूँढ़ता है वसंत अनंत ।

*

कलियाँ

भगवत शरण श्रीवास्तव 'शरण'

कलियाँ मुस्कान सिखाती है और पुष्प सिखाते हैं हँसना
झुक-झुक तरु लतिकाएँ मिलकर प्यार जताते हैं अपना
जब पवन चले हौले- हौले ये बसुधा हर्ष मनाती है
विचलित प्राणी कुछ पल ही दु:ख-दर्द भुलाते हैं अपना
उपवन-उपवन पक्षी चहाके अलौकिक राग सुनाते हैं
उनकी भाषा में कपट नहीं हिय खोल दिखाते हैं अपना
सागर की लहरें हर्षित हो चन्द्रमा चूमने को आतुर
ये कैसा अद्भुत प्रकृति प्रेम जो ईश दिखाते हैं अपना ।
तारा गन नभ में चमक-चमक निशि का शृंगार सजाते हैं
ऊषा को जगा प्रभाकर भी प्रकाश लुटाता है अपना
संध्या की गोधूली बेला में खग पशु लौटे निज नीड़ धाम
भूखे शिशु का पोषण करने सर्वस्व लुटाते हैं अपना
माँ की ममता की क्या समता कोई न उऋण हुआ इससे
माता की ममता के सम्मुख हरि शीश झुकाते हैं अपना
माधुर्य कटुक एक संग उगें ज्यों फूल शूल संग खिलते हैं
बस उसी भांति हम जीवन में निज मार्ग बनाते हैं अपना ।

*

कविताएँ

नित्यानंद गायेन की तीन कविताएँ

20 अगस्त 1981 को पश्चिम बंगाल के बारुइपुर, दक्षिण चौबीस परगना के शिखरबाली गांव में जन्मे नित्यानंद गायेन की कविताएँ और लेख सर्वनाम, कृतिओर, समयांतर, हंस, जनसत्ता, अविराम, दुनिया इनदिनों, अलाव, जिन्दा लोग, नई धारा, हिंदी मिलाप, स्वतंत्र वार्ता, छपते -छपते, समकालीन तीसरी दुनिया, अक्षर पर्व, हमारा प्रदेश, कृषि जागरण आदि पत्र -पत्रिकाओं में प्रकाशित। इनका काव्य संग्रह 'अपने हिस्से का प्रेम' (२०११) में संकल्प प्रकशन से प्रकशित। कविता केंद्रित पत्रिका 'संकेत' का नौवां अंक इनकी कविताओं पर केंद्रित। इनकी कुछ कविताओं का नेपाली, अंग्रेज़ी, मैथिली तथा फ्रेंच भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। फ़िलहाल हैदराबाद के एक निजी संस्थान में अध्यापन एवं स्वतंत्र लेखन।

बच्चों की हँसी

वे बच्चे
जो, गवाह हैं
जंगल महल से
हिरोशिमा, नागासाकी
फिर वियतनाम से लेकर
ईराक से अफगानिस्तान तक
कभी मुस्कुरा उठे गर
रोते-रोते
उस रात, चाँद भी हँसेगा।
जिस दिन
विदर्भ, बस्तर
और देश के हर कोने से
बंद हो जायेगी
खाली बर्तनों की आवाज़
उस दिन खिल उठेगा
हर चमन में हँसेगा फूल ।
बंदूक की आवाज़ बंद होने पर
जब रात में
चैन से सोयेगा पूरा देश
और मुस्कुरा देंगे बापू
राजघाट की समाधी से ...
मैं फिर पढूँगा भारतीय संविधान का
तीसरा अध्याय .....
*

रेत पर खेलते बच्चे

रेत पर खेलते
बच्चे, कितने खुश दीखते हैं
टीले, घरौंदे बनाते
फिर तोड़ते
फिर बनाते
कितने खुश होते बच्चे
अपने सपनों से खिलवाड़ करते
फिर बुनते नए सपने
मुट्ठी में भरकर
वे जानते हैं,
साकार नही होते
रेत पर।
फिर भी कितने खुश होते हैं
रेत पर खेलते बच्चे .....
*

सुंदरवन

परिवर्तन के नारों के बीच
शांत पड़ी है
'मौनी नदी'
सुंदरवन के बीच
कुछ बचे बाघों ने
माथे पर लिए
आदमखोर का कलंक
पंकिल कछार पर
नदी किनारे छोड़ दिए हैं
पंजों के निशान
ताकि,
गिन सकें हम
आसानी से
उनकी संख्या
और मैनग्रोव के जंगल
करते हैं
ज्वार का इंतज़ार
जंगल निवासी भी हो गए
विलुप्त ....
मफ़ियों के हाथों
परिवर्तन का यह दौर
बहुत भारी है
पुल बन गया है,
और
नौकाएँ निष्क्रिय हैं
बस परिवर्तन वाले दल का
पताका बुलंद है
खारा पानी पीकर
सुंदर वन के बंदरों के
लाल हुए गाल पर भी
दिखता है उन्हें विपक्ष
भय है मुझे
कहीं बाघ के बाद
यह भी न आ जाये
निशाने पर ..
मौनी नदी ने बताया
क्यों रहती है वो
खामोश ....
*

nityanand.gayen@gmail.com

कविताएँ

डॉ. रत्ना वर्मा की वासंती कविताएँ

जन्म- रायपुर छत्तीसगढ़ में, शिक्षा- एम.ए.,एम.फिल, पी-एच.डी (समाज शास्त्र), एवं पत्रकारिता में डिग्री के पश्चात 1981 से पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय। विभिन्न दैनिक समाचार पत्रों में कार्य। पिछले पाँच वर्षों से वेब पत्रिका उदंती डॉट काम का संपादन। सामाजिक विषयों पर निरंतर लेखन। लेख, कविताएँ, व्यंग्य का विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन। प्राकृतिक, ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्त्व के स्थलों की यात्रा करना अच्छा लगता है। थोड़ी बहुत फोटोग्राफी में भी रुचि।

वासंती ख़त

उतरती ठंड के हाथों
मौसम ने फिर
भेज दिया
एक वासंती ख़त
गुलाब की कलियों के नाम
अब
सुर्ख हो जाएँगी पंखुरियाँ।
सुबह की गुनगुनी धूप
उतर कर
आ गई आँगन में।
अब
सिलसिला शुरु होगा मनुहार का
धूप तापने बैठ जाएँगी क्यारियाँ।
शाम की हवा
गूँजती है कानों में
मेहंदी हसन की ग़ज़लों की तरह
लौट रहे हैं चहकते हुए
नर-मादा के जोड़े
अपने पंखों से हवा को काटते हुए
अब
बजेंगी कहीं मधुर सम्बन्धों की सारंगियाँ
मौसम ने फिर
भेज दिया
एक वासन्ती ख़त ।

*

वासंती आमंत्रण

गुलाब के बगीचे से गुज़रते हुए
इतराती खुशबू कुछ यूँ बोली-
यादों के झरोखे से झाँकती
अलसाई सुबह में पलकें
कुछ यूँ खोली।
पुरवैया के झूलों पर सवार
आम के बौरों से लदी टहनियाँ
कुछ यूँ डोली।
बहक गया देह का व्याकरण
मौसम फिर बाँट गया
बासंती आमंत्रण।

*

उत्सव बनकर

तुम आए
केसरिया सम्बन्धों का परिधान लिये
तरुणाई दहक- दहक गई
बीर बहूटी मखमली
धरती के ललाट पर
बिंदिया पलाश की
फिर चमक गई।
वासंती खुशबू से
भीग गया मन-उपवन
अंगड़ाई लेते ही चूड़ियाँ खनक गई।
हवा छेड़ जाती है
डालों की पत्तियाँ
जंगल की खामोशी आज महक गई।
आए हो तुम उत्सव बनकर
मौसम की हर साँस
अनजाने बहक गई।

*

udanti.com@gmail.com

अविस्मरणीय

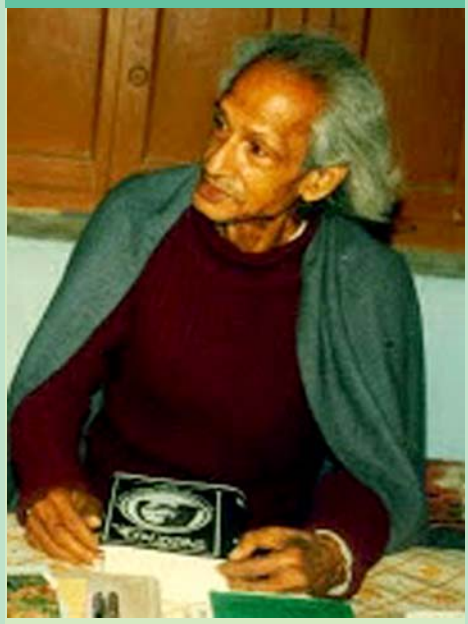

आरसी प्रसाद सिंह

हमारा देश भारत है नदी गोदावरी गंगा।
लिखा भूगोल पर युग ने हमारा चित्र बहुरंगा।
हमारी देश की माटी अनोखी मूर्ति वह गढ़ती।
धरा क्या स्वर्ग से भी जो गगन सोपान पर चढ़ती।
हमारे देश का पानी हमें वह शक्ति है देता।
भरत सा एक बालक भी पकड़ वनराज को लेता।
जहाँ हर साँस में फूले सुमन मन में महकते हैं।
जहाँ ऋतुराज के पंछी मधुर स्वर में चहकते हैं ।
हमारी देश की धरती बनी है अन्नपूर्णा -सी।
हमें अभिमान है इसका कि हम इस देश के वासी।
जहाँ हर सीप में मोती जवाहर लाल पलता है।
जहाँ हर खेत सोना कोयला हीरा उगलता है।
सिकंदर विश्व विजयी की जहाँ तलवार टूटी थी।
जहाँ चंगेज की खूनी रंगी तकदीर फूटी थी।
यही वह देश है जिसकी सदा हम जय मनाते हैं।
समर्पण प्राण करते हैं खुशी के गीत गाते हैं।
उदय का फिर दिवस आया, अँधेरा दूर भागा है।
इसी मधुरात में सोकर हमारा देश जागा है।
नया इतिहास लिखता है हमारा देश तन्मय हो।
नए विज्ञान के युग में हमारे देश की जय हो।
अखंडित एकता बोले हमारे देश की भाषा।
हमारी भारती से है हमें यह एक अभिलाषा।

*

हाइकु

डॉ.अमिता कौण्डल

1
मन पंछी -सा
उड़ना चाहे , पर
पग बंधन ।
2
दु:ख- सागर
गहराता ही जाए
दिखे न आस ।
3
आरजू यही -
प्यार तुम्हारा बने
मेरा शृंगार ।
4
भर लो प्रेम
दामन में प्रीतम
कल क्या पता ?
5
जीवन छोटा
अभिलाषाएँ बड़ी
बाँट ले प्यार ।
6
दु:ख को चीर
प्यार को ढूँढों वहाँ
वक्त पंछी -सा ।
7
पानी की बूँदें
सिंचित वसुन्धरा
सौंधी खुशबू ।
8
भीगी कलियाँ
दुबकी हैं चिड़ियाँ
वर्षा का जादू ।
9
सर्दी की धूप
बरगद -सी छाया
माँ का आँचल ।
10
पिता का साया
सुख की छतरी है ,
नीम की छाया ।

*

हाइकु

कमला निखुर्पा

1
प्यार की प्यास
दहकता पलाश
बसंत साथ ।
2
नेह का चाँद
छलक उठे नैन
आँचल भीगा ।
3
गीत यादों के
जब-जब भी गूँजे
छलके नैन ।
4
दर्द की भाषा
मन की ये हताशा
आँसू ही बाँचे ।
5
मन में चुभी
व्यंग्य -वाणों की कील
घाव ना भरें ।
6
चूनर भीगी
भीगे नैन बावरे
मन है प्यासा !
7
गौरैया प्यारी
बसो इसी अँगना
खो न जाना ।
8
पीपल कहे-
जल्दी आना बिटिया
राह तकूँ मैं ।
9
हंसा-बादल
गगन -सरोवर
पंछी हैं नैन।
10
नेह -बन्धन
कभी टूटे ना यह
माँगू मैं दुआ ।

*

हाइकु

डॉ.रमाकान्त श्रीवास्तव

1
सजनी-संग
सपने होगी होली -
सैनिक सोचे ।
2
कब आया था
सीमा पर बसंत
पता न चला !
3
सरसों फूले
महुआ गिरे बाग
बसंत आया ।
4
गाता है भोर
प्रणय-सिक्त गीत
उषा मुग्ध ।
5
गये शिकारी
खोज रही हिरनी
निज हिरना ।
6
रची-बसी हो
मेहंदी की गंध में
याद आती हो।
7
वर्षा की साँझ
बजाते शहनाई
छिपे झींगुर ।
8
गाँव मुझको
मैं ढूँढ़ता गाँव को
खो गये दोनों ।
9
खिले कमल
जलाशय ने खोले
सहस्र नेत्र ।
10
कटे विरिछ
गाँव की दुपहर
खोजती छाँव ।

*

लघुकथाएँ

रब करदा है सो...

मुरलीधर वैष्णव

सुबह पाँच बजे का समय। वह सिर झुकाए सेंट्रल जेल की काल कोठरी के आगे बैठा था। कोई पैंतीस-छतीस साल का लम्बी कद-काठी का गोरा-चिट्टा युवक। उसके उदास चेहरे पर मौत की छाया तैरती स्पष्ट दिखाई दे रही थी। बीस-पच्चीस मिनट बाद उसे वहाँ फाँसी दी जाने वाली थी। बतौर मजिस्ट्रेट फाँसी देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था।

''भाई साहब माफ़ करना। इस वक्त आपसे कोई सवाल करना मुनासिब तो नहीं है, फिर भी यदि बुरा न मानें तो क्या आप बतलाएँगे कि आपके खिलाफ जो फाँसी का फैसला हुआ वह सही है या नहीं?'' झिझकते हुए मैंने उससे पूछा।

''रब करदा है सो ठीक ही करदा है।'' उसने कुछ क्षण बाद एक लम्बी आह भर आकाश की ओर देखते हुए कहा।

''यानी कि सुपारी लेकर दो आदमियों की हत्या करने का आरोप आप पर सही लगा था?'' मैंने उससे खुलासा जवाब की अपेक्षा की।

''की करना है, साबजी, कहा न, रब करदा है सो ठीक ही करदा है।'' उसने मुझ पर एक उदास दार्शनिक दृष्टि डालते हुए वही बात दोहराई।

मेरी उत्सुकता अभी भी शान्त नहीं हुई थी।

''रब वाली आपकी बात तो सही है। फिर भी नीचे सेशन कोर्ट से राष्ट्रपति तक जो आपके खिलाफ फैसला हुआ है, वह तो सही है न।'' फिर भी मैं ज़िद कर बैठा।

''फैसले की बात छोड़ो साब। वह तो बिलकुल ग़लत हुआ है। मैंने उन बन्दों को नहीं मारा। न उनके लिए कोई सुपारी ली। हाँ वे बन्दे हमारी आपसी गैंगवार की क्रास फायरिंग में ज़रूर मारे गए थे ; लेकिन मेरे दुश्मनों ने मेरे खिलाफ झूठी गवाही देकर मुझे फँसा दिया।'' -अचानक वह झल्ला उठा। लेकिन उसके इस खुलासे से हम सभी स्तब्ध थे।

''फिर आप ऐसा क्यों कह रहे हैं कि रब करदा है सो ठीक ही करदा है?'' अब मुझसे यह पूछे बिना नहीं रहा गया।

''इससे पहले मैंने सुपारी लेकर चार कत्ल किए थे और उन सब मुक़दमों में बरी हो गया था'' - उसने बेझिझक स्वीकार किया।

*

तोहफ़ा

प्रेम गुप्ता 'मानी'

नींद की खुमारी में वह पूरी तरह डूबता कि तभी बग़ल में लेटी पत्नी ने उसे हल्का सा झिंझोड़ दिया,''सुनो, तुम्हें पता है, कल कौन सा दिन है?''

''ऊहँ... जो भी दिन होगा, अच्छा ही होगा, पर इस समय तो सोने दो....।''

''ऊहूँ...मुँह इधर करो न...अभी तो ग्यारह ही बजे हैं और तुम हो कि...।'' पत्नी ने ज़बर्दस्ती उसे अपनी ओर खींचा तो न चाहते हुए भी उसे अपनी नींद से बोझिल पलकों को खोलना ही पड़ा, ''अच्छा बाबा तुम बताओ....क्या है कल....?''

''कल...कल नए साल का पहला दिन है न....।''

''हाँ है तो..... वह तो हर साल होता है....इसमें नई बात क्या है....? खामख्वाह नींद खराब कर दी....।'' उसके चेहरे पर हल्का क्रोध उगा कि तभी पत्नी ने उसके खुरदरे गाल को चुम्बित कर दिया, ''इस बार नए साल पर तुमसे एक तोहफ़ा चाहती हूँ...बोलो दोगे...?''

पत्नी के चेहरे पर जब उसने प्यार का भरपूर सूरज उगे देखा तो फिर अपने को भी रोक नहीं

पाया और पत्नी को आलिंगन में जकड़ लिया, ''बोलो, क्या चाहिए तुम्हें....?''

''बस यही कि सुबह खिले हुए मिलो...। सुना है नए साल की शुरुआत जैसी होती है, वैसा ही पूरा साल गुज़रता है....। मैं चाहती हूँ कि पिछली बार की तरह इस बार सुबह उठते ही तुम मुझसे लड़ो नहीं...। हर बार किसी न किसी बात पर लड़ने की शुरुआत कर ही देते हो....।''

''मुझे लड़ने का शौक चर्राया है....?'' उसकी जकड़ अपने आप ढीली पड़ी तो पत्नी कसमसा उठी,'' नहीं...शौक तो मुझे है।जब देखो तब चिड़चिड़ा उठते हो.....। अब मैं तुम्हारी कोई बाँदी तो हूँ नहीं जो हर वक्त चाकरी में जुटी रहूँ...।''

''नहीं जनाब....नौकर तो मैं तुम्हारा हूँ, जो कहती हो, हाज़िर कर देता हूँ...।'' वह ताव में उठ कर बैठ गया तो पत्नी भी उठ बैठी।

''देखो, आधी रात के समय लड़ाई मत शुरू करो....। क्या मैं जानती नहीं कि क्या हो तुम....?''

''जानती हो तो क्या कर लोगी तुम? बड़ी आई नए साल का तोहफ़ा लेने वाली...। इन दस सालों में बड़ा जी खुश कर दिया है न ,जो तुम्हें तोहफ़ों से लाद दूँ.....?''

''क्या मैं इस घर से चली जाऊँ ?''

''हाँ-हाँ....सुबह जाती हो तो अभी चली जाओ, पर मेरा दिमाग़ मत खाओ...।'' पता नहीं अनजाने ही वह कैसे चीख पड़ा तो पत्नी सिसकियाँ भरने लगी।

रात के बारह बज चुके थे। पास ही कहीं नए साल के आगमन पर खुशियों का उजाला फैला था और संगीत की चहकन से पूरा वातावरण गुंजित हो रहा था पर अंदर उनके कमरे में गहरे अँधेरे का तोहफ़ा उनको मुँह चिढ़ा रहा था...।

*

लघुकथाएँ

सुहाग-व्रत

डॉ. शकुन्तला किरण

सावित्री ने जब सुहाग-पूजा के लिए रोज़ की सूती साड़ी ही पहनी तो सत्येन झल्ला पड़ा, "वहाँ सबके सामने यह साड़ी अच्छी लगेगी? वह लाल चुनरी वाली पहन जाओ न।"

"हूँ?.....ख़ूब बक्से भरे हैं न साड़ियों से?.....ले-देकर वही तो एक साड़ी है, उसे भी बिगाड़ दूँ, तुम्हें तो लाज-सरम नहीं.....पर मुझे तो घर की इज़्ज़त .."

"एक ही साड़ी? वह मूँगिया चैक वाली? गोटे की नीली जापानी? शादी की गुलाबी वाली?"

"और....सुना दो, सौ-दो सौ नाम? मैं कब मना कर रही हूँ? तुम तो बाबा हर दिन नई साड़ी लाते हो! हर रोज़ नया गहना गढ़वाते हो! करम फूटी तो मैं ही हूँ.....जो तुम्हारे पल्ले पड़ गई हूँ! तुम तो औरत का इत्ता ख़याल रखते हो कि बस्स. !"

"सारी बात सिर्फ बदलने की थी.....उसमें कितनी बकबक..... ?"

"पागल कुत्ती हूँ न? तभी तो इतनी बकबक करती हूँ! पर तुम तो कवि नहीं, एक अफ़सर हो अफ़सर ! पाँच-सात हजार महीना कमाते हो, और आँख मूँद..सीधे मेरी हथेली पर धर देते हो? हुँह! अगर दो दिन भी घर चलाना पड़े तो सारा कविपणा ठिकाणे आ जाए! भाग तो मेरे ही फूटणे थे जो तुम्हारे पल्ले" और उसका सुबकना चालू हो गया।

"अच्छा बाबा, माने लेता हूँ कि तुम्हारे पास एक भी साड़ी नहीं है...यहाँ तक कि यह जो पहन रखी है....वह भी नहीं। अब जाओ....नीचे औरतें आवाज़ें दे रही हैं!.....पर.....यह बता जाओ कि खाना कहाँ पर रखा है?"

"चूल्हे में।"

और सावित्री आँसू पोंछती, उसी साड़ी में, चिरसुहाग का वर देने वाले ईसर-गणगौर के व्रत-पूजन को चल दी।

*

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545

Service to humanity

लम्बी कहानी

नरेन्द्र कोहली

वरांडे का वह कोना

(हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरेन्द्र कोहली की ये लम्बी कहानी धारावाहिक रूप में प्रकाशित की जाएगी।)

नरेन्द्र कोहली

जन्म: 6 जनवरी, 1940 जन्म भूमि सियालकोट (अब पाकिस्तान में)
शिक्षा: एम.ए., पी.एच.डी
उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, व्यंग्यकार तथा निबंधकार

प्रकाशित कृतियाँ:

व्यंग्य: एक और लाल तिकोन,पांच एब्सर्ड उपन्यास, आश्रितों का विद्रोह, जगाने का अपराध,परेशानियाँ,गणतंत्र का गणित, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियाँ, समग्र व्यंग्य -मेरे मुहल्ले के फूल, समग्र व्यंग्य -सब से बड़ा सत्य वह कहाँ है, आत्मा की पवित्रता।

कहानी संग्रह:परिणति, हानी का अभाव, दृष्टि देश में एकाएक, शटल, नमक का कैदी, निचले फ्लैट में, नरेन्द्र कोहली की कहानियाँ, संचित भूख।

उपन्यास: पुनरारंभ, आतंक, साथ सहा गया दु:ख, मेरा अपना संसार, दीक्षा, अवसर, जंगल की कहानी, संघर्ष की ओर युद्ध (दो भाग),अभिज्ञान, आत्मदान, प्रीतिकथा, महासमर- 1 (बंधन), महासमर - 2, (अधिकार) , महासमर - 3 (कर्म), तोड़ो कारा तोड़ो - (निर्माण), महासमर - 4 (धर्म), तोड़ो कारा तोड़ो - 2 (साधना), महासमर - 5(अंतराल), क्षमा करना जीजी!, महासमर - 6 (प्रच्छन्न), महासमर - 7 (प्रत्यक्ष), महासमर - 8 (निर्बंध), तोड़ो कारा तोड़ो - 3, तोड़ो कारा तोड़ो - 4, तोड़ो कारा तोड़ो - 5।

संकलन: मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, समग्र नाटक, समग्र व्यंग्य , समग्र कहानियाँ भाग-1, अभ्युदय (दो भाग) - (रामकथा, दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध (भाग १ एवं २) का संकलित रूप, नरेन्द्र कोहली: चुनी हुई रचनाएं , नरेन्द्र कोहली ने कहा (आत्मकथ्य तथा सूक्तियाँ), मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएं, समग्र व्यंग्य-1 (देश के शुभचिंतक), व्यंग्यसमग्र व्यंग्य-2 (त्राहि-त्राहि), समग्र व्यंग्य-3 (इश्क एक शहर का), मेरी तेरह कहानियाँ, न भूतो न भविष्यति (उपन्यास), स्वामी विवेकानन्द-जीवन, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, कुकुर तथा अन्य कहानियाँ (बाल कथाएँ) ।
नाटक-शंबूक की हत्या, निर्णय रुका हुआ, हत्यारे, गारे की दीवार, संघर्ष की ओर, किष्किंधा, अगस्त्यकथा, हत्यारे।

आलोचना: प्रेमचंद के साहित्य सिद्धांत (शोध-निबंध), हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत (शोधप्रबंध), कुछ प्रसिद्ध कहानियों के विषय में (समीक्षा), प्रेमचंद (आलोचना), जहाँ है धर्म, वहीं है जय (महाभारत का विवेचनात्मक अध्ययन)।

बाल कथाएँ: गणित का प्रश्न (बाल कथाएँ), आसान रास्ता (बाल कथाएँ), एक दिन मथुरा में (बाल उपन्यास), अभी तुम बच्चे हो (बाल कथा), कुकुर (बाल कथा), समाधान (बाल कथा)।

अन्य रचनाएँ: किसे जगाऊँ ? (सांस्कृतिक निबंध), प्रतिनाद (पत्र संकलन), नेपथ्य (आत्मपरक निबंध), माजरा क्या है? (सर्जनात्मक, संस्मरणात्मक, विचारात्मक निबंध), बाबा नागार्जुन (संस्मरण), स्मरामि (संस्मरण)।

पता: डॉ. नरेन्द्र कोहली, 175 वैशाली, पीतम पुरा, दिल्ली-34, भारत।

narendra.kohli@yahoo.com

....पिछले अंक से जारी

सब लोग सुबह के नाश्ते के लिए डायनिंग हॉल की ओर जा रहे थे कि प्रमिला तुम से आ टकराई ...

उस समय तक हम में से कोई नहाया-धोया तक नहीं था। किसी ने ढंग के कपड़े तक नहीं पहने थे। यह सारा काम तो ब्रेकफास्ट के बाद ही होता था। पर प्रमिला नहा-धो आई थी। उसने चटख़ हरे रंग की साड़ी बांध रखी थी। हरा ही ब्लाऊज़ था। कानों में हरे झुमके और गले में हरे मोतियों का ही हार था। गहरी लिपस्टिक लगा रखी थी उसने ; और माथे पर चटख लाल बिंदी लगा रखी थी। वैसे लग तो बहुत चीप ही रही थी, पर सस्ता ही सही, आकर्षण तो उसमें था ही। अस्थायी जीत के लिए सस्ता आकर्षण भी कितना प्रहारक होता है। ... क्षण भर में ही वारे-न्यारे हो जाते हैं; और जीवन की दिशा बदल जाती है।

वह अपने हाथ में नूरजहां के समान एक ताज़ा खिला, गहरे सुर्ख रंग का गुलाब पकड़े हुए थी, जो शायद अभी-अभी होस्टल की फुलवारी में से तोड़ा गया था। उसने आगे बढ़ कर, मुँह से बिना कुछ कहे हुए, वह गुलाब तुम्हारी ओर बढ़ा दिया था।

मैं धक् रह गई। कैसी निर्लज्ज है यह लड़की। इतने लोगों के बीच, सार्वजनिक रूप से, वह तुम्हें गुलाब दे रही थी। जैसे जान-बूझ कर तुम पर अपने अधिकार की घोषणा कर रही हो।... हद होती है किसी भी चीज़ की ...

तुम्हारा हाथ आगे नहीं बढ़ा। तुमने गुलाब स्वीकार नहीं किया। न सार्वजनिक रूप से इस प्रकार के व्यवहार से तुम्हारे कान लाल ही हुए थे। बड़े मंझे हुए खिलाड़ी के समान, तुमने रसिक बन कर पूछा था, ''किसी को गुलाब का फूल देने का अर्थ समझती भी हो ?...''

वह बेशर्म न लजाई, न शरमाई, न उसने आँखें झुकाईं, न वहाँ से टली। बड़ी अदा से मुस्करा कर उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया, ''हम सारे काम समझ-बूझ कर ही करते हैं।''

और तुमने झूम कर पंक्तियां पढ़ीं :

''इन हसरतों से कहो, कहीं और जा बसें।
इतनी जगह कहाँ है, दिले दागदार में।''

क्या बताऊँ , उस क्षण क्या-क्या गुज़र गया था, मेरे मन में।... क्या समझूँ तुम्हें ? क्या हो तुम ? जिस उम्र में लड़के किसी भी लड़की से बात तक करने के लिए लार टपकाते रहते हैं, उसी उम्र में तुम प्रमिला जैसी फुलझड़ी का आत्मनिवेदनी गुलाब ठुकरा रहे हो। तुम्हारे भीतर पुरुष की दुर्बलता नहीं है क्या ? उस लड़की ने तुम्हें आकृष्ट नहीं किया ? उसके इस प्रस्ताव ने तुम्हारे भीतर का अंध और हिंस्र पौरुष नहीं जगाया ? तुम्हारे मन में उसके प्रति प्रेम अथवा आकर्षण न सही, दुर्बलता, लोभ, मोह, कुछ भी नहीं जागा ? अनायास मिलते नारी शरीर के प्रति वासना भी नहीं ?... उस मांस का प्रलोभन भी नहीं ? क्या समझूँ तुम्हें मैं ?

जो कुछ मैंने सुना और देखा था, वह तो यही था कि पुरुष के भीतर एक पशु होता है। वह पशु और कुछ नहीं देखता, बस मादा को देखता है। वह नारी मात्र की कामना करता है। नारी का निषेध ही पुरुष को रोके रखता है। एकनिष्ठा हो, मर्यादा हो, संकोच हो, लज्जा हो, - कुछ भी हो, ये सब नारी के ही गुण हैं। नारी के प्रति नकार तो मैंने पुरुष में कभी नहीं देखा था। मैं तो यही जानती थी कि पुरुष यदि सत्पुरुष है, तो केवल इसलिए क्योंकि उसे दुष्टता करने का अवसर नहीं मिला। ... पर तुमने मेरे देखते-देखते उसके गुलाब का तिरस्कार किया था ... यह तो ऐसा ही था, जैसे तुमने उसके चुंबन के लिए उठे हुए अधरों को अस्वीकार कर दिया हो...

कुछ असाधारण लोग भी होते हैं क्या ? प्रकृति के द्वारा शरीर और मन में रोपी गई दुर्बलताओं को भी वे जीत सकते हैं क्या ?... मेरा हृदय कितना गदगद था... तुम साधारण नहीं थे, तुम औरों के समान नहीं थे। तुम्हारी अपनी मर्यादा थी, चुनाव था। तुम इतने सस्ते नहीं थे कि कोई भी लड़की अपनी आँखों के इशारे से तुम्हें अपने चरणों में गिरा लेती। तुम अस्वीकार कर सकते थे। प्रलोभन का प्रतिकार कर सकते थे। ... यह तो मैंने बहुत बाद में, बहुत पढ़-लिख कर जाना था कि ऊँचा तो वही उठ सकता है, जो अस्वीकार कर सकता है, त्याग कर सकता है, चुनाव कर सकता है। राह में आई हर चीज़ को ग्रहण कर लेने वाला व्यक्ति तो

नारी का निषेध ही पुरुष को रोके रखता है। एकनिष्ठा हो, मर्यादा हो, संकोच हो, लज्जा हो, - कुछ भी हो, ये सब नारी के ही गुण हैं। नारी के प्रति नकार तो मैंने पुरुष में कभी नहीं देखा था।

कूड़ा बटोरने वाला या कबाड़ी ही हो सकता है। ... अच्छा हुआ, तुमने प्रमिला के गुलाब को अस्वीकार कर दिया ... उसके आत्मनिवेदन को भी अस्वीकार कर दिया। ... जानते हो न, उस रात उसने अज़ीज़ से उसका तकिया मांग लिया था। अज़ीज़ ने उसे उसका निमंत्रण समझा था। उसका वश चलता तो वह उसके साथ उसी तकिए पर सिर रख कर सोता। पर प्रमिला ने उसकी इच्छा पूरी नहीं की। फिर दोनों में खूब जम कर लड़ाई हुई थी। ... पता नहीं, तुम्हें मालूम हुआ या नहीं, कि अपने बाद के जीवन में प्रमिला उम्र में स्वयं से बहुत बड़े, किसी विवाहित पुरुष के साथ भाग गई थी। उस व्यक्ति का परिवार आज तक उसकी जान को रो रहा है।

तुमने स्वयं अपने पैरों पर चलकर आए, लबालब भरे हुए, उस प्याले को पीने से इंकार कर दिया था। अर्जुन ने उर्वशी के निमंत्रण को अस्वीकार कर उसका शाप झेला था। राजा विराट द्वारा अपनी पुत्री उत्तरा के विवाह के प्रस्ताव को संशोधित कर उत्तरा को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार किया था।... तुम्हारा विवेक जाग्रत है या कोई सहज वृत्ति है तुम्हारे भीतर, जो तुम्हें बता देती है कि तुम्हारे लिए क्या हितकर नहीं है ?

****

उसी शाम हमारा नाटक हुआ था। याद है तुम्हें ? नाटक जब अपनी पराकाष्ठा को छू रहा था, नायक पति के रूप में तुम अपनी नायिका पत्नी से बहुत नाराज़ हो गए थे ... मैंने सदा ही अनुभव किया है कि क्रोध अथवा नाराज़गी का अभिनय तुम्हारे लिए कभी भी कठिन नहीं रहा। तुम्हारा चेहरा वैसे ही गंभीर सा है। तुम स्वयं न हँसो तो सामने वाला कभी कोई हल्की बात करने का साहस ही नहीं कर पाएगा।... जरा सी भौं तानते हो, नथुने फुलाते हो तो इतने क्रुद्ध लगने लगते हो कि ... तुम अपना चेहरा इतना लाल कैसे कर लेते हो ?... क्षोभ, आवेश, क्रोध, नाराज़गी, घृणा .... इन सबका अभिनय ... जैसे तुम्हारे लिए अभिनय ही नहीं है...

तो जब बहुत क्रुद्ध होकर तुमने यानी नाटक के नायक-पति ने, मुझे यानी नायिका-पत्नी को चाँटा मारा, तो जाने क्या हुआ... तुम्हारा हाथ ज़ोर से चल गया था या मैं ही असावधान थी ... चाँटा कुछ अधिक ही ज़ोर से पड़ गया। ... मेरा सिर घूम गया ... मन भनभना उठा ... अभिनय का अर्थ यह कहाँ है ?...

मारने के पश्चात् तुम्हें उदासी और पश्चात्ताप का अभिनय करना था। तुम उदास हो गए थे... कितने उदास ... मुझे लगा, यह अभिनय नहीं था। नायक-अभिनेता उदास होने का अभिनय करता; किंतु यहाँ तो स्वयं विनीत ही उदास ही नहीं दुखी हो गया था। तुम्हें लगा होगा कि नायक ने नायिका को नहीं मारा, विनीत ने केतकी को जोर से चाँटा मार दिया है, वह भी अनजाने, बिना चाहे, अकारण ... यह जो भी हुआ, बहुत अनुचित हुआ।...

कितने उदास हो गए थे तुम। अभिनय को पार कर, वास्तव में। ... उन परिस्थितियों में मेरे लिए अभिनय करना कठिन हो रहा था। मैं तुमसे रूठी रहने का अभिनय कैसे करती। मेरा मन तो कुछ इतना तरल हो रहा था कि तुम्हारा उदास चेहरा, अपनी दोनों हथेलियों में थाम कर, तुम्हारी उदास आँखों में मुस्कान उंडेलती हुई कहूँ , ''इतने उदास क्यों हो विनीत। तुमने मुझे मारा कहाँ ? वह तो

अभिनय था।... तुम्हारी उदासी तो ऐसी है कि तुमने सचमुच भी मुझे मारा होता, तो भी ऐसी उदासी के बाद, केतकी को तुम पर प्यार ही आता''

****

हमारा नाटक राँची -क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ घोषित हुआ। और कोई नाटक इतना अच्छा था भी नहीं। उस पिछड़े क्षेत्र से ऐसी कोई अपेक्षा भी नहीं थी। किसी को भी नहीं। चाईबासा, चक्रधरपुर, हजारीबाग या स्वयं राँची में ऐसी कोई संस्था नहीं थी, जो इतना अच्छा नाटक प्रस्तुत कर सकती। जमशेदपुर उन नगरों की तुलना में बड़ा और विकसित नगर था। वहाँ कलात्मक गतिविधियों की कुछ अच्छी परंपरा थी। ... और फिर हमारे निर्देशक हुसेन साहब सचमुच अच्छे निर्देशक थे...

****

हाँ तो मैंने अपनी बात जहाँ से शुरू की थी, वह पटना के कालेज के उस होस्टल की ही शाम थी, जहाँ हमें ठहराया गया था। ...

राँची की तुलना में पटना आया हुआ हमारा दल बहुत छोटा था। राँची में बहुत कुछ छंट गया था, फिर भी काफी लोग थे।

दोपहर के बाद, जब मेक-अप इत्यादि का काम चल रहा था तो हमारी अंग्रेज़ी की लैक्चरर मिस बैनर्जी मेरी कंघी कर रही थीं। तुम्हारा मेक-अप शायद हो चुका था, या बाद में होना था। वैसे भी लड़कों का मेक-अप होता ही कितना है। ... अब याद नहीं है। केवल इतना ही याद है कि जब मिस बैनर्जी मेरी कंघी कर रही थीं, तब तुम वहीं थे।

सहसा उन्होंने कंघी अपने बाएँ हाथ में पकड़ी और दाएँ हाथ से मेरे बाल सहलाए, ''तुम्हारा बाल भीषोन चीकना है।'' फिर जाने उन्हें क्या शरारत सूझी। उन्होंने तुम्हारी ओर देखा, ''हाय न बिनीत।''

तुम जिस प्रकृति के लड़के थे, तुमसे अपेक्षा थी कि मिस बैनर्जी के इस वाक्य के पश्चात् तुम आगे बढ़ते और कहते, ''देखूं।'' और मेरे केशों को अच्छी तरह सहला कर फतवा देते, ''सूअर के बालों जैसे तो रुखड़े तो हैं।''

पर जाने क्यों, तुम्हारी शरारत नहीं जागी। तुम झेंप कर एक कदम पीछे हट गए, ''मैं क्या जानूँ ।''

मिस बैनर्जी ने तुम्हें इतने पर भी नहीं बख्शा। वे तपाक से बोलीं, ''तुम नेहीं जानता, तुम्हारा हीरोइन का केश चीकना है या नहीं। कैसा हीरो है रे तुम। इतना रिहर्सल किया किंतु कोई लाभ नहीं उठाया।''

पता नहीं, उनके मन में क्या था। वे तुम्हें खिजाने के लिए यह सब कह रही थीं या सचमुच उन्हें संदेह था कि हम में कुछ ऐसी निकटता है। जैसे मैं तुम्हारी गोद में सिर रख कर लेटी रहती होऊं और तुम मेरे केश सहलाते रहते होओ। अच्छी खासी रोमैंटिक थीं मिस बनर्जी।

तब तक तुम कुछ संभल गए थे, ''हुसेन साहब ने नाटक में चाँटा मारने का दृश्य तो रखा है, केश सहलाने का नहीं रखा।''

तुम वहाँ से हट गए थे। शायद नहीं चाहते थे कि मिस बैनर्जी कुछ और कहें। पर मिस बैनर्जी ने तुम्हारी पीठ पर एक वाक्य उछाल दिया, ''हम बोलेगा हुसेन साहब से। इतना अत्याचार नहीं करना चाहिए। बहुत क्रुएल है हुसेन साहब।''

तुमने या तो वह वाक्य सुना नहीं, या जानबूझ कर अनसुना कर गए।

और फिर मेरी ओर झुक कर मिस बैनर्जी बोलीं, ''चाँटा खाने के बाद प्रेम का सीन भी होना चाहिए। तुम बिनीत का कांधा पर अपना सिर रख दो, और वह तुम्हारा केश-टा सोहला देगा।''

इस सारी बातचीत में मैं पहली बार 'मैं' हुई। अब तक बैठी हुई सब कुछ सुन रही थी, जैसे यह सब कुछ मेरे संदर्भ में न कहा जा रहा हो; किसी और के लिए कहा जा रहा हो। किसी और के माध्यम से हमारे मन की बात कह दी जाती है, तो कितना उल्लास जागता है न मन में। मैं भी मन ही मन रस पी रही थी। तुम्हारे और मेरे शृंगार की बात हो रही थी, और मैं बीच में थी ही नहीं। कह रही थीं मिस बैनर्जी और उत्तर दे रहे थे तुम। मैं तो जैसे नेपथ्य में बैठी रस पी रही थी।

मिस बैनर्जी जब सीधी मुझ से संबोधित हुईं, तो पहली बार 'मैं', 'मैं' हो गई।

''प्लीस मिस बैनर्जी,'' जाने मैं कैसे कह गई, ''आप उसे बेस दे रही हैं, मुझे परेशान करने का।''

वे हँस पड़ीं, ''हाम तो तुम्हारा अफेयर को बेस देता हाय, फ्लाई करने को। बहुत दिन से हाम देखता हाय, हीरो-हीरोइन में रोमांस नाहीं होता। हाम को माजा नाहीं लागता। तुम्हारा मन नाईं, तो हाम नईं बोलेगा।'' और फिर वे गंभीर हो गईं, ''बिनीत ऐसा माफिक लाड़का नाईं। ओई तुमको पोरेशान नाईं कोरेगा। ओई बेसी लोक्खी छेले। एई माफिक लाड़का हाम आज तक नाईं देखा। नाईं तो नाटक बाद में शुरू होता, रोमांस पोहिले आरोंभ हो जाता।...''

मेरा मेक-अप हो गया। और कुछ करने को था नहीं और मन था कि सिर पटक रहा था, तुमको खोजने को। किसी से पूछना भी नहीं चाहती थी कि तुम कहाँ हो। ... कहीं मिस बैनर्जी ही कह दें, ''हो गया शुरू।''

रामनरेश त्रिपाठी की वह कविता पढ़ी है न तुमने : ''मैं खोजता तुझे था, जब कुंज और वन में। तू छुपा हुआ था, दीन के वतन में।'' ... कुछ ऐसे ही शब्द हैं। स्कूल के कोर्स में पढ़ी थी। अब शब्द अवश्य ही गड़बड़ा भी गए होंगे। कुछ पता ही नहीं चलता। ... अवश्य ही गड़बड़ा गए होंगे ...

मैं बहाने-बहाने से तुम्हें कहाँ-कहाँ खोज आई थी और तुम ऊपर के वरांडे में रेलिंग से लगे खड़े थे, उदास से ...

''तो तुम यहाँ खड़े हो। मुझ से कहा नहीं गया कि 'मैं तुम्हें कब से खोज रही हूँ ।'

तुमने केवल देखा। कुछ कहा नहीं।

''हुसेन साहब कह रहे थे कि सब का मेक-अप हो जाए, तो इकट्ठे ही सब लोग हॉल की ओर जाएँ ।''

''सबका मेक-अप हो गया क्या ?'' तुमने पूछा था।

''नहीं। अभी चल रहा है।'' मैं भी आकर तुम्हारे पास रेलिंग से लग कर खड़ी हो गई, ''यह स्थान अच्छा है। नीचे तो बहुत घुटन है।''

''हाँ। यहाँ खुला-खुला सा है।'' सहसा तुम मेरी ओर घूमे, ''आज मिस बैनर्जी को क्या हो गया था ?''

''क्यों ? बहुत झेंप गए क्या ?'' मन हो रहा था कि मैं भी दोनों हाथों से तुम्हें गुदगुदा दूँ ।

पर तुम हल्के मूड में नहीं थे। तुम कुछ और गंभीर हो गए, ''उनका क्या है, वे तो बोल-बाल कर एक ओर हो गईं। पर इसकी प्रतिक्रिया यहीं थोड़ी रुक जाएगी। कल सारे लड़के-लड़कियां यही सब कहेंगे। तुम पर आवाज़ें कसी जाएँगी । ... तुमको परेशान किया जाएगा, वह भी मेरे बहाने

से।''

तो तुम मेरे लिए परेशान थे। मन में आया, कहूँ , 'व्यक्ति गुदगुदाए जाने का विरोध तो करता है किंतु उसका अपना मज़ा भी तो है। तुमने देखा नहीं कि फूल की पंखुड़ी पर जब वर्षा की बूंदें पड़ती हैं, तो वह कैसे थरथरा उठती है; किंतु उसके बाद कैसे निखर आती है।''

... पर यह सब कहा नहीं।

''कौन कहने जा रहा है, किसी से।'' मैंने कहा, ''वहाँ था ही कौन।''

''प्रमिला थी।'' तुमने उत्तर दिया, ''उसे तुम नहीं जानतीं, मैं जानता हूँ ।''

प्रमिला ... मैंने मन ही मन सोचा, ... वही लड़की, जो तुम्हें गुलाब का फूल दे रही थी। तुमने उसका गुलाब स्वीकार नहीं किया तो अब वह तुम्हारे मार्ग में कांटे तो बोएगी ही। ... पर तुम अपने लिए परेशान नहीं थे, परेशान तो तुम मेरे लिए थे। भला, तुम मेरे लिए क्यों परेशान थे ? ... कॉलेज में इतनी लड़कियां थीं। ... उन सब की परेशानी से भी क्या इसी प्रकार परेशान हो जाते थे ?... आज जितना तुम्हें जानती हूँ , उससे कह सकती हूँ कि शायद तुम में सब के लिए परेशान होने की क्षमता है; पर तब ऐसा नहीं लगा था। तब यही माना कि तुम मेरे लिए ही परेशान थे। तुम्हारी परेशानी मुझे अच्छी लगी। क्या मेरे लिए यह सुखद नहीं है कि तुम मेरी परेशानी की आशंका से परेशान हो ?

तब जाने कैसे मिस बैनर्जी की आत्मा मुझमें आ विराजी। थोड़ी देर तक, जो कुछ मिस बैनर्जी कह रही थीं, वही सब करने का मेरा मन हो आया ... तुम्हें परेशान करने का ...

''प्रमिला तुम्हें अच्छी नहीं लगती क्या ?''

तुमने जिस प्रकार तड़प कर मुझे देखा था, उसमें जाने कैसी-कैसी तो पीड़ा थी। एक बार तो मेरा मन भी कांप गया। सोचा - ऐसा क्रूर खेल तो तुम से न ही खेलूं। पर छोटी-बड़ी लहरों के समान अनेक विपरीत और विरोधी इच्छाएं मेरे मन में उछल-कूद मचा रही थीं। एक ओर मन तड़प रहा था, तुमसे विनोद और परिहास के अधिकार की निकटता पाने के लिए ; और दूसरी ओर तुम्हारे संवेदनशील मन के साथ इस प्रकार का खेल ... निराला की 'जूही की कली' याद हो आई। पवन के द्वारा जूही की कली का झकझोरा जाना ठीक था, पर यदि पवन कली की पंखुड़ियाँ ही बिखेर दे तो ?...

''मैं इतना सस्ता नहीं हूँ ।'' तुमने कहा था।

आज भी समझती हूँ , तब भी समझती थी कि यह तुम्हारा अहंकार नहीं था। सचमुच तुम इतने सस्ते नहीं थे।

''पर तुम उसे अच्छे लगते हो।'' कह गई और चिंता में पड़ गई; जाने तुम क्या उत्तर दो।

तुमने आँखें तरेर कर मुझे देखा, ''उसे तो हर दूसरा पुरुष अच्छा लगता है।''

''जो भी लड़की तुम्हें पसंद करे, तुम उसके विषय में यही सोचोगे ?''

''पागल हूँ क्या ? मेरा दिमाग खराब है ?'' तुमने मुझे घुड़का।

''अच्छा, प्रभा से तुम्हारा क्या संबंध है ?'' जाने यह सब पूछने का साहस मैं कैसे कर पा रही थी, ''मैंने सुना था, तुम्हारी कोई अफेयर ...''

तुमने तमक कर मुझे देखा था। लगा, यह सब पूछना नहीं चाहिए था। अफेयर थी तो तुम्हारी थी । क्या अधिकार था मुझे, यह सब कुरेदने का ... किसी की गोपनीय बातों की ऐसी छानबीन। क्या अधिकार था मुझे ? पर मेरी अपनी मजबूरी भी तो थी। उस समय तक तो मैं स्वयं भी नहीं समझ पा रही थी कि तुम्हारे विषय में यह सब जानने की इतनी व्याकुलता मुझ में क्यों थी। ... क्यों मैं जान लेना चाहती थी कि तुम्हारा मन कहीं बंधा तो नहीं है, तुम्हारी आँखें कहीं टंगी तो नहीं हैं ...

''अफेयर।'' जाने कैसे तुम इतने पारदर्शी हो उठे थे, ''अफवाहों पर विश्वास मत कीजिए।...'' तुमने पूछा, ''अफेयर का समय आ गया है हमारे जीवन में ?''

फिर वही। एकदम भिन्न। इतने सारे लड़के हैं हमारे आस-पास। हमारे आसपास के लड़के ही क्यों , यह सारा व्यापक पुरुष समाज। जिस किसी के जीवन में जब कभी कोई स्त्री आई, क्या कभी किसी ने सोचा कि अफेयर का भी कोई समय होता है ? पुरुष के जीवन में नारी के आकर्षण का भी कोई समय होता है ? लोहे ने कभी सोचा कि चुंबक की ओर खिंचने का समय आया है या नहीं ? ताप लगते ही, पिघलने से पहले क्या घी ने कभी सोचा कि उसके पिघलने का समय ...

पर तुम न लोहा हो, न घी... तुम मनुष्य हो। ... पर क्या अन्य पुरुष मनुष्य नहीं हैं ? नहीं, शायद वे चिंतनशील मनुष्य नहीं हैं। प्रसाद ने ठीक ही कहा है, ''प्रेम करने की भी एक ऋतु होती है।'' ऋतु के अनुकूल होने से ही जीवन रसमय होता है। क्या जीवन को इस गहराई से जीते हो तुम ?...

''कुछ तो है।'' मैंने चुहल के वेश में जिज्ञासा का जाल फैलाया, ''आखिर उसी को लेकर ऐसी चर्चा क्यों है ?''

तुमने गंभीरता से मुझे देखा, ''चर्चा है या नहीं; और है तो क्यों है - यह तो मैं नहीं जानता। पर ऐसा मुझे भी लगा... हो सकता है, गलत ही लगा हो ...''

''क्या ?''

''यही कि वह मेरी ओर कुछ बढ़ी तो थी...।''

''पर तुमने बढ़ावा नहीं दिया ?''

''नहीं।'' तुम तनिक भी हल्के नहीं हो पा रहे थे, ''बढ़ावा देने, न देने का समय ही नहीं मिला मुझे।''

''क्या मतलब ?''

''इन बातों को समझने में मुझे कुछ देर लगती है...।''

''हाँ , यह दर्शन या साहित्य तो है नहीं, जो तुम तत्काल समझ जाओ।'' मैंने तुम्हारी बात पूरी नहीं होने दी, ''दर्शन और साहित्य - दोनों से जटिल होती है, नारी।''

''जीवन सारे दर्शनों से जटिल है।'' तुमने कहा था, ''वैसे अपने विषय में कई बार मुझे लगा है कि कई बातें मैं तत्काल समझ नहीं पाता हूँ। मेरे रिफलैक्सेस बहुत स्लो हैं।'' और सहसा तुम हँस पड़े थे, ''यह नासमझी मेरे जीवन में बहुत काम आई है।''

सच कहूँ, मैं स्तब्ध रह गई। कितना बड़ा सच कह गए थे तुम। जीवन के प्रलोभनों में तत्काल जा फंसना यदि समझदारी है, तो वैसे समझदार तुम नहीं थे। प्रलोभन तो आते हैं और निकल जाते हैं - तत्काल उनके जाल में न कूदे, तो व्यक्ति बच ही जाता है। जब वह फंसने के लिए सायास उस ओर बढ़ता है, तब वह पाता है कि प्रलोभन अपना जाल पहले ही समेट चुका है। ...

तुम में वह नासमझी थी क्या ?

''प्रभा के व्यवहार में थोड़ा दीवानापन है।''

तुमने कहा था, ''मैं नहीं जानता कि तुमने कभी नोट किया है या नहीं - वह जोगन है।''

''कैसे ?''

''बस वह अपना जोग बखानने लगती है और अपने अलख की घेराबंदी आरंभ कर देती है।'' तुमने कहा था, ''उसके व्यवहार के लिए अंग्रेज़ी में एक शब्द है - 'सिकनिंग'। वह अपने आप को इस बुरी तरह किसी पर आरोपित करती है कि अगला परेशान हो जाता है।'' तुम क्षण भर कुछ इस ढंग से रुके थे कि सहसा मुझे महाभारत के अर्जुन की याद हो आई। ... कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव और पांडव सेनाएं लड़ने को सन्नद्ध खड़ी हैं; और उन दोनों के मध्य अर्जुन का रथ खड़ा है। ... अर्जुन सोच रहा है, ... लड़ूं या न लड़ूं ... तुम कुछ इस अंदाज में खड़े थे ... कहूँ या न कहूँ ... बात भी तो बाण से कम नहीं है। बाण के चलते ही युद्ध आरंभ हो जाएगा, जो किसी के रोके नहीं रुकेगा; और बात के कहते ही उसका प्रभाव आरंभ हो जाएगा। रहीम ने कहा है न ... तुम मुझे मुँह से निकालो तो मैं तुम्हें घर से निकाल दूंगी।....

सहसा जैसे तुमने निर्णय कर लिया, ''कई बार मैंने सोचा कि मैं इतना दुष्ट क्यों हूँ । वह जब मिलती है, हर बार इतनी सद्भावना से बात करती है। कभी मेरे विरुद्ध नहीं बोलती। कभी कड़वा नहीं बोलती। हर बार सोचता हूँ कि मैं अपना व्यवहार अधिक कोमल अधिक शिष्ट बनाऊंगा; किंतु हर बार अपने व्यवहार से कुछ इतने परोक्ष रूप से मुझे चिढ़ा देती है कि न तो मैं यह समझ पाता हूँ कि मैं चिड़चिड़ा क्यों गया हूँ और न मैं अपना व्यवहार मधुर रख पाता हूँ ।....

मेरा मन एक अकथनीय उल्लास से भर आया था। जाने कहाँ से आकर एक मोर मेरे मन में बैठ गया था। लग रहा आकाश पर चारों ओर मेघ ही मेघ घिर आए हैं। और वह मोर अपने पँख फैला-फैला कर, झूमर नाचना चाहता था। पैर जैसे थिरकना चाहते थे। अंगुलियां सीढ़ियों की रेलिंग पर ही ताल देना चाहती थीं। और सच कहती हूँ, पूरी तरह से सतर्क न होती तो उस समय मैं गुनगुना उठती। ... कुछ उन्माद ही हो आया था मुझे। ... प्रभा से तुम्हारी अफेयर नहीं थी। कभी नहीं रही। वह तुम्हारे लिए भी सिकनिंग थी। तुम भी उससे छिटक जाना चाहते थे। आह, मैं कितनी प्रसन्न थी

जाने कहाँ से आकर एक मोर मेरे मन में बैठ गया था। लग रहा आकाश पर चारों ओर मेघ ही मेघ घिर आए हैं। और वह मोर अपने पँख फैला-फैला कर, झूमर नाचना चाहता था। पैर जैसे थिरकना चाहते थे। अंगुलियां सीढ़ियों की रेलिंग पर ही ताल देना चाहती थीं। और सच कहती हूँ, पूरी तरह से सतर्क न होती तो उस समय मैं गुनगुना उठती । कुछ उन्माद हो आया था मुझे।

तुम फिर से कुछ गंभीर हो गए थे।... नहीं कुछ असमंजस था, तुम्हारे चेहरे पर। क्यों ? और फिर तुम स्वयं ही बोले थे, ''मैंने इस प्रकार कभी किसी से कुछ नहीं कहा। जाने क्यों मैं तुम से यह सब कुछ कह गया हूँ ।''

तुम प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरी ओर देख रहे थे, जैसे मुझ से कुछ पूछ रहे थे; पर मैं जानती हूँ , तुम मुझ से कुछ पूछ नहीं रहे थे। तुम मुझे समझा रहे थे। मैं समझ रही थी। मैं जानती थी कि तुम मुझ से क्या कह रहे थे ...

****

उस शाम हमारे नाटक का मंचन था। नाटक के मंचन की उत्तेजना में ये सारी बातें चेतना से जैसे धुल गई थीं। नाटक के बाद ही हमें रात की गाड़ी पकड़ लेनी थी। आशा यही थी कि राँची के समान ही, यहाँ पटना में भी हमारा ही नाटक सर्वश्रेष्ठ घोषित होगा; और जमशेदपुर लौटते ही हम दिल्ली जाने की तैयारियों में लग जाएंगे।

पर हुआ कुछ और ही। यद्यपि हमारा नाटक राँची की प्रस्तुति से भी अच्छा हुआ था; और हमारा निश्चित मत था कि हमारी प्रस्तुति सर्वश्रेष्ठ थी। ... किंतु निर्णायकों का निर्णय हमारे पक्ष में नहीं हुआ।

जाने क्यों मेरे मन में तब भी महाभारत का ही एक चित्र उभरा। दिन भर का युद्ध लड़ लेने के बाद पांडव अपने मित्रों और संबंधियों के साथ सिर टिका कर शोकपूर्ण मुद्रा में बैठे हुए थे। ... जैसे अभिमन्यु का वध हो गया हो या घटोत्कच ने वीरगति पाई हो।

हमारा शिविर भी पांडवों का शोकग्रस्त शिविर हो रहा था। किंतु हमें तो शोकपूर्ण मुद्रा में बैठने का भी अवसर नहीं मिला। हमें खाना खा कर तत्काल स्टेशन भागना था।

गाड़ी हमने ठीक समय पर पकड़ ली थी। उन दिनों का तृतीय श्रेणी का साधारण डिब्बा था। पटना से जमशेदपुर की यात्रा के लिए, उन दिनों तो केवल एक ही गाड़ी हुआ करती थी - साऊथ बिहार एक्सप्रेस। उसे टाटा-पटना एक्सप्रेस भी कहा जाता था। और तब तक किसी भले आदमी ने यह भी नहीं सोचा था कि रात भर की इस यात्रा के लिए, किसी यात्री को पूरी बर्थ भी चाहिए। बिना किसी आरक्षण के ही, जितनी जगह मिल जाए, उसपर बैठे-बैठे ही यात्रा होती थी।

हमारे उस डिब्बे में उस दिन बहुत अधिक भीड़ नहीं थी; अर्थात् ऐसी भीड़ नहीं थी कि खड़े-खड़े ही जाना पड़े। शायद उन दिनों न छुट्टियाँ थीं, न शादी-विवाह का मौसम था और ही पर्व-त्योहारों का। ... फिर भी लेटने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। बैठने के लिए भी बहुत खुली जगह नहीं थी। सुविधा यही थी कि डिब्बे में अधिकांश लोग हमारे ही दल के थे। कुछ गिने चुने बाहरी लोग भी रहे होंगे।

तुम्हें याद होगा कि आधे से ज़्यादा डिब्बा हमारे ही पास था। हुसैन साहब, मिस बैनर्जी, डॉ. वर्मा तथा डॉ. सिंह ... अर्थात् हमारा अध्यापक वर्ग और नृत्य मंडली की लड़कियां ... ये सब डिब्बे के एक खंड में थे; और नाटक के अभिनेता, तबला बजाने वाला वह दुबला पतला लड़का - सरकार, गायिका सरस्वती और कुछ लोग हमारे वाले खंड में थे। पर जिस समय की बात मैं कर रही हूँ, उस समय तुम वहाँ नहीं थे।

प्रतियोगिता में असफलता ने जाने क्यों मुझ पर

बहुत ही बुरा प्रभाव डाला था। मन इतना डूबने लगा था कि लग रहा था कि मुझे फीवर भी हो गया है और सिर में दर्द भी होने लगा है। समझ नहीं पा रही थी कि तबीयत पहले से ही कुछ गड़बड़ थी और मैं नाटक की उत्तेजना और तुम्हारे इतने निकट होने के उल्लास में, उसे भूली रही थी; या नाटक की असफलता ने ही मन को उदास करने के साथ-साथ सिर में पीड़ा भी जगा दी थी।

बैठे-बैठे मन उचाट होता गया और सहसा ही मैंने पहचाना कि मेरे मन में तुम्हारे प्रति खीज उमड़ रही है। आखिर इस समय, जब मुझे तुम्हारी इतनी आवश्यकता है, कहाँ हो तुम ? यहाँ आ कर और लोगों के साथ चैन से क्यों नहीं बैठते ?... पर फिर सोचा कि तुम मेरे समान, नाटक के एक अभिनेता मात्र नहीं हो। तुम्हारा महत्त्व और दायित्त्व इससे कहीं ज़्यादा है। तुम इस मंडली के कर्ता-धर्ताओं में से हो। कहीं कोई दायित्व निभा रहे होगे। मैं तो यह भी नहीं जानती थी कि मेरी अटैची कहाँ है। सामान का भी सारा दायित्व तुम्हीं लोगों पर था। हो सकता है ...

गाड़ी चलती जा रही थी और पटना जंक्शन को बहुत पीछे छोड़ आई थी। खुली खिड़कियों से आने वाले हवा के ठंडे झोंके तन को और साथ ही साथ मन को भी राहत दे रहे थे। ... पर तुम अभी तक नहीं आए थे।

और वह सींकिया सरकार जाने कहाँ से अपना तबला-डुग्गी उठा लाया था; और वहीं एक ट्रंक पर उन्हें टिका कर, स्वयं भी मेरे सामने जम गया था, ''आपनी ऐक टा गान गाइए न। हम शोंगोत कोरेगा।''

वह पटना के इस सारे प्रवास में मेरे गाने के साथ अपने तबले की संगत के लिए बहुत उत्सुक रहा था; जैसे प्रभाकर, सरस्वती के साथ एक दो-गाना गाने के लिए बहुत परेशान रहा था।

''मेरा मन नहीं है।'' मैंने हल्के से कहा, ''मेरी तबीयत ठीक नहीं है।''

''अरे गान गान न।'' सरकार बोला, ''तोबीयोत तो अपने आप ठीक हो जाएगा।''

मैं उठकर खड़ी हो गई। निर्णय नहीं कर पा रही थी कि क्या करूँ । उठकर मैं डिब्बे के दरवाज़े की ओर आई। देखा, तुम अकेले खुले दरवाज़े के बीचों-बीच खड़े, हवा के सर्राटों को अपने चेहरे पर झेलने का सुख उठा रहे हो। हवा के सर्राटों से तुम्हारे बाल उड़-उड़ कर माथे पर आ रहे थे। ... और डॉ. सिंह की वह टाई, जो उन्होंने तुमको नाटक के लिए दी थी, तुम उसे अब भी बांधे हुए थे। वह तुम पर खूब फबती थी; किंतु इस समय तो वह हवा में असहाय सी फड़फड़ा रही थी। कैसे फिल्मी हीरो से तो लग रहे थे तुम। टाई तुम्हारी फड़फड़ा रही थी और मेरा मन गुनगुना रहा था, ''हवा में उड़ता जाए मेरा लाल दुप्पट्टा मलमल का''

मुझे देख कर तुम मुस्कराए। मुझे लगा कि मेरी उदासी ही कुछ कम नहीं हुई, सिर का दर्द भी हल्का पड़ गया। ... और सहसा मेरी रीढ़ की हड्डी में एक सिहरन दौड़ गई : कैसे खड़े हो तुम। कहीं गिर पड़े तो ?

मैं बढ़ कर तुम तक आई। बिना किसी पूर्व चेतावनी के, तुम्हारी बाँह पकड़ कर तुम्हें मैंने भीतर खींच लिया और कपाट बंद कर दिया।

तुमने कोई प्रतिरोध नहीं किया। केवल मुझे देखते रहे।

''कहीं गिर पड़ते तो ?'' मेरे मुख से शब्द फूटे, ''ऐसे खड़ा हुआ जाता है गाड़ी में ?''

''नहीं। दादी अम्मा।'' तुमने पूरी गंभीरता से कहा था।

मेरी हँसी अभी पूरी तरह थमी भी नहीं थी कि प्रमिला उधर आ निकली। मुझे लगा कि वह हमें खोजती हुई ही इधर आई है। वह आकर सिर पर सवार हो गई तो जाने मेरा उल्लास कहाँ खो गया; जैसे बादल का टुकड़ा आ जाए तो शरीर को सहलाती धूप कहीं खो जाती है। तबीयत फिर से भारी हो गई। सिर का दर्द ही नहीं जागा, मन का विष भी फुफकार उठा। लगा, प्रमिला मेरे निकट नहीं खड़ी थी, मेरी छाती पर सवार थी ।

''तो यहाँ छिपे हैं, हीरो-हिरोइन।''

मैं काठ हो गई। इस बदतमीज़ को क्या कहूँ । ... बहुधा ऐसा हो जाता है मेरे साथ। अचानक क्रोध आ जाए तो न कुछ बोल पाती हूँ , न कुछ कर पाती हूँ।

पर तुम्हारे चेहरे पर मुस्कान खेल गई। बहुत ही सहज भाव से, जैसे तुम पहले से ही तैयार रहे हो, बोले, ''तू यहाँ क्यों आ गई खलनायिके ?'' और फिर तुमने मुद्रा बदली, ''बुरा न मानना देवि। यह संस्कृत नाटकों की संवाद-शैली है। यदि आप चाहें तो मैं आपको नायक-नायिका के संवाद में विघ्न प्रस्तुत करने वाले विदूषक के रूप में भी संबोधित कर सकता हूँ ।''

प्रमिला किसी से कम नहीं थी। वह तनिक भी हतप्रभ नहीं हुई। बोली, ''संस्कृत नाटकों की संवाद शैली ही तो एक मात्र संवाद शैली नहीं है। तुम कहो तो मैं पारसी थियेटर की शैली में नायिका के समान तुम्हारी टाई की नॉट ठीक कर दूँ ।'' और उसने बढ़ कर तुम्हारी टाई की नॉट को झकझोरा, ''और कहूँ कि आप आजकल की आधुनिकाओं से सावधान रहें। इनके डंक का विष आदमी को ...''

और तभी डॉ. सिंह उधर आ निकले। शायद वे टायलेट की ओर आए थे। क्षण भर के असमंजस के बाद बोले, ''रिहर्सल हो रहा है ? ध्यान रखना कि कहीं कोई एक्सिडेंट न हो जाए।''

मेरा दिमाग झनझना रहा था। यह प्रमिला। हद कर दी, इसने तो। कैसे पीछे पड़ी है विनीत के। राँची में वह तुम्हें गुलाब का फूल दे रही थी और यहाँ तुम्हारी टाई की नॉट ठीक कर रही है। ... बेशर्म कहीं की। निर्लज्ज। ... पर तुम्हारा व्यवहार ? तुम ने गुलाब का फूल अस्वीकार कर दिया था; पर अब ? अब क्या करोगे तुम ? अपनी टाई उसके हाथों से छीन लोगे ? प्रमिला को झटक दे दोगे ? ... या कपाट खोल कर उसे ट्रेन के साथ-साथ दौड़ती हुई पटरियों के हवाले कर दोगे ? एक बार ही मुक्ति हो जाए ...

''पारसी थियेटर खत्म।'' तुम ने टाई खोल कर हाथ में पकड़ ली।

मेरा मन तुम्हारे प्रति कितना-कितना कृतज्ञ हो उठा था। तुमने वही किया, जो मैंने चाहा था। तुमने प्रमिला के प्रस्ताव को फिर से अस्वीकार कर दिया था ...

मेरे सिर का दर्द फिर से हल्का हो गया था; किंतु शरीर सहसा वृक्ष से लता हो गया था। लगता था कि अपने सहारे खड़े रहने या बैठ जाने की शक्ति नहीं है मुझ में। कहीं लेट जाऊं। पर गाड़ी में ढंग से बैठ जाने की जगह मिल जाए, वही बहुत होती है ; लेटने के लिए स्थान ...

वहाँ से टलने का मन नहीं हो रहा था। वहाँ तुम्हारे पास प्रमिला खड़ी थी। अभी उसने तुम्हारी

टाई सँवारी थी, थोड़ी देर में तुम्हारे कॉलर सँवारने लगेगी। उसका क्या भरोसा है।... तुम्हारी आस्तीन सँवारते सँवारते, तुम्हारे कंधे पर सिर टिका देगी।... या गाल पर लगे किसी काल्पनिक धब्बे को साफ करने के बहाने तुम्हारे कपोलों को अपनी हथेलियों से रगड़ने लगे ...

मैंने स्वयं को पहचाना। मेरा शरीर क्यों वृक्ष से लता हो गया था। क्यों मेरे शरीर में प्राण नहीं लग रहे थे। सिर में दर्द था; शरीर में शायद ज्वर का ताप था। मन में नाटक के सफल न होने की हताशा थी। कहीं लेट जाऊँ...

''मैं चलती हूँ विनीत।'' मैंने कहा था, और वापस अपनी सीट पर लौट आई थी।

सरकार अभी तक अपना तबला-डुग्गी रखे, वहाँ बैठा था। हाँ, डुग्गी पर अपने हाथ न रख कर, उस पर अपना सिर टिका रखा था, जैसे उसका शरीर भी वृक्ष से लता हो गया था।... उसकी आँखें बंद थीं। लगता था, वह वैसे बैठा-बैठा ही सो चुका था।

मैं अपने स्थान पर बैठ गई। बैठने भर को काफी खुला स्थान था। सोचा था, शायद तुम आओ। तुम्हारे बैठने के लिए भी तो स्थान चाहिए था। किंतु तुम तो अभी वहीं डटे हुए थे, प्रमिला के पास। जाने वह क्या कर रही थी, तुम्हारे साथ।...

डॉ. सिंह क्या कह गए थे... पहली बार मेरा ध्यान उनके वाक्य की ओर गया, ''कहीं कोई एक्सिडेंट न हो जाए।'' क्या अभिप्राय था उनका ? ... तुम्हारा मेरी अथवा प्रमिला की ओर आकृष्ट होना दुर्घटना थी क्या ? या दो लड़कियों की ओर एक साथ आकृष्ट होने के परिणाम को दुर्घटना कह रहे थे? यह भी तो हो सकता है कि तुम्हारे कारण मुझ में और प्रमिला में झगड़ा ... छि ...

तुम आ गए थे। प्रमिला तुम्हारे साथ नहीं थी। जाने उसे कहाँ चलता कर आए थे।

तुम आकर मेरे पास खड़े हो गए थे, ''मेरे लिए जगह है ?''

मेरे मन और मस्तिष्क की जो हिल्लोलित स्थिति थी, उसमें स्वयं को संतुलित रख, भावुकता को बचा जाना, बड़ा कठिन था। मुझे डर लगा - कहीं मैं ऐसा कुछ कर या कह न जाऊँ , जो मर्यादा तोड़ता हो। कहीं मैं भावुक हो कर ...

''आओ, बैठो।'' मैं एक ओर खिसक गई।

तुमने एक क्षण के लिए मुझे देखा। मेरी दाहिनी ओर खिड़की थी और मैंने खिड़की से दूर हट कर तुम्हारे लिए खिड़की के साथ जगह बना दी थी। यदि तुम वहाँ बैठ जाते तो मेरी बाईं ओर तुम होते और दाईं ओर निर्मल सिंह। तुमने हाथ से मुझे बाईं ओर खिसकने का संकेत किया। मैं खिसक गई। तुम बैठ गए। अब तुम्हारी आँखों से मैंने भी स्थिति को देखा। खिड़की से लगी मैं बैठी थी। मेरे साथ तुम थे, तुम्हारे साथ निर्मल सिंह और फिर शारदेन्दु। सामने सरस्वती थी। उसके साथ सरकार। फिर घोष और कामेश्वर।... यह व्यवस्था ठीक थी।

मैं थोड़ी देर खिड़की के बाहर देखती रही। दिखना ही क्या था। बाहर घना अंधेरा था। जाने गाड़ी कहाँ से गुज़र रही थी। इस क्षेत्र के विषय में मुझे अधिक ज्ञान नहीं था। जहानाबाद और गया निकल चुके थे। उसके पश्चात् दक्षिण बिहार का वह क्षेत्र था, जहाँ शायद ही कोई बड़ा स्टेशन हो। बड़का काना, गोमो और मुरी जैसे दो-एक स्टेशन

शिवना प्रकाशन

The Leading Publication House

Publisher's Identifier Number :978938

Under Category No. 5 (ISBN)

भारतीय तथा प्रवासी हिंदी साहित्य का अग्रणी प्रकाशन संस्थान । उच्च गुणवत्ता की पुस्तकें प्रकाशित करने में सबसे आगे । साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं तथा इंटरनेट पर पुस्तकों के प्रचार प्रसार में सबसे आगे। भव्य समारोहों में पुस्तकों का विमोचन देश के शीर्ष साहित्यकारों के हाथों । पुस्तकों के आवरण तथा इनले डिज़ाइन शीर्ष चित्रकारों की तूलिका से । टंकण तथा वर्तनी की शून्य अशुद्धियाँ । सुप्रसिद्ध समीक्षाकारों तथा आलोचकों से पुस्तकों की समीक्षा । विभिन्न साहित्यिक सम्मानों के लिये पुस्तकों की अनुशंसा करना ।

Shivna Prakashan, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001 India, Email: shivna.prakashan@gmail.com
Phone: +91-7562-405545, +91-7562-695918, Mobile: +91-9977855399

थे, जिन्हें वहाँ बड़ा स्टेशन माना जाता था। उन स्टेशनों पर इस समय न कोई गाड़ी में चढ़ता था, न उतरता था। बस पीने का पानी और कुल्हड़ की चाय मिल जाती थी। रात के समय जाने वह भी मिले न मिले ...

फिर बाहर क्या देख रही थी मैं ?

कुछ समझ नहीं पा रही थी मैं। मन में एक प्रकार की परेशानी और खीज सी थी। मेरे वहाँ से चले आने के बाद प्रमिला ने क्या किया होगा ? तुम्हारे गले से लग गई थी या तुम्हें अपनी बाहों में समेट लिया था ? कुछ ऐसा ही करने के लिए तो वह तब से तुम्हारे आगे-पीछे घूम रही थी। कभी गुलाब का फूल ... कभी टाई ... मेरे आने के बाद तो एकदम एकांत था वहाँ । ... चुंबन या अंग-प्रदर्शन ... ब्लाऊज़ का ऊपरी बटन खोल सकती थी... वह कुछ भी कर सकती थी ... अवश्य ही... सहसा मेरा सारा क्रोध प्रमिला को छोड़, तुम पर टूट पड़ा था। मेरे आ जाने के बाद, क्यों रहे तुम वहाँ , प्रमिला के साथ ?...

लगा, मेरी खीज ने अपने चरम को छू लिया और फिर उसका उतार आरंभ हो गया... तुम मेरी पत्नी हो क्या कि मैं हट गई तो तुम पर-पुरुष के निकट न रहो। यदि मुझे सचमुच ही प्रमिला से छीन-झपट का यह युद्ध लड़ना था तो मैंने कुछ क्यों नहीं किया ? अपने शरीर के उभारों को तुम्हें चुभाने का अवसर तो मेरे पास भी था। तुम्हें चुंबन का निमंत्रण तो मैं भी दे सकती थी। स्त्री तो मैं भी हूँ । मेरे पास क्या नहीं है ? पर मैं स्वयं को इस प्रकार लुटाने को तैयार नहीं थी। तो फिर मैं प्रमिला से नाराज़ क्यों थी ? और तुम्हारा भी क्या दोष था ?... प्रमिला ही फूहड़ हो रही थी, तुम एक बार भी चीप नहीं हुए। मेरे सामने तुमने बार-बार प्रमिला का तिरस्कार ही किया था। प्रमिला के स्थान पर मैं होती तो इतने तिरस्कार के बाद कभी तुम्हारी शक्ल भी न देखती। फूल लौटा दिया। न सही प्रेम, न सही आकर्षण।... न सही कुछ और ... साधारण शिष्टाचार में भी व्यक्ति दूसरे का मन रखने के लिए ही ऐसी चीज़ें स्वीकार कर लेता है। पर तुमने फूल लौटा दिया। टाई खोल कर हाथ में पकड़ ली। ... और अब भी तुम उसकी एकांत संगत छोड़ कर मेरे पास आ गए थे।

मुझे लगा, इस समय मेरा तन-मन बहुत हताश हो रहा है। मैं शायद बहुत दुर्बल हो रही हूँ, तभी तो इस प्रकार खीज रही हूँ । शायद अपने-आप से लड़ने की परेशानी से बचने के लिए, किसी और से लड़ लेना चाहती हूँ।... पर तभी मुझे लगा, मैं तुम से लड़ना नहीं चाहती। उन सब से लड़ना चाहती हूँ, जो तुम्हारे और मेरे बीच आ रहे हैं।... मेरे सिर में दर्द है। शरीर शायद फीवर से टूट रहा है। बैठने तक की शक्ति नहीं है। मन इस प्रकार अवसादग्रस्त हो रहा है कि पिघल कर बह जाना चाहता है। मुझे तुम्हारा सहारा चाहिए ... भावनात्मक भी और शारीरिक भी ... आज सोचती हूँ तो समझ नहीं पाती हूँ कि यह कैसे हो गया। मुझे लग रहा था कि मैं बिना सहारे के बैठ भी नहीं पाऊँगी । ... और मैंने दाहिनी ओर झुक कर अपना सिर तुम्हारे कंधे पर टिका दिया।...

''तबीयत ठीक नहीं है ?'' तुमने बहुत धीरे से मेरे कान में पूछा।

विचित्र व्यक्ति हो तुम भी; तुमने उसे रोमांस क्यों नहीं माना ? नारी की समर्पण इच्छा को क्यों नहीं समझा ?

''सिर दुख रहा है।'' मैंने कहा, ''शायद ज्वर भी है।''

तुमने अपनी हथेली से मेरा माथा छुआ। चाहती तो मैं थी कि इसी बहाने से तुम मेरे कपोलों को भी छुओ ... थोड़ा सहला भी दो ... अपना प्यार जताओ...।

पर तुम ने वह सब कुछ भी नहीं किया। बड़े डाक्टरी अंदाज़ में कहा, ''है। ज्वर है। सौ तक तो अवश्य है। लेट जाओ।''

तुम अपने स्थान से थोड़ा खिसके। ... मैं झुकती चली गई ... जगह अधिक थी नहीं। जगह की जैसे कोई ज़रूरत भी नहीं थी। मैं झुकती ही चली गई ... तुम्हारी हथेली ने फिर मेरे माथे को छुआ। फिर तुम्हारे हाथों ने जैसे मेरे माथे को सहलाया। अंगुलियों के आगे बढ़ने का अहसास हुआ। ... अब तुम्हारी हथेली मेरे गाल पर थी। ... मैं बेहद विह्वल थी। मेरा शरीर जैसे तुम्हारे स्पर्श के लिए उतावला हो रहा था। रोम-रोम जैसे तुम्हारी हथेली को पुकार रहा था। मेरा चेहरा तुम्हारी ओर घूमा ही नहीं, कुछ उठ भी गया था। मेरे होंठ जैसे तुम्हारा स्पर्श पाने के लिए आधे खुल से गए थे। ... साथ बैठे हुए लोग ऊँघ रहे थे। वैसे भी अंधेरा था। कोई क्या देखता और समझता।...

पर सहसा तुम्हारा हाथ जैसे ठिठक गया; और फिर सरक कर वापस लौट गया। तुम मेरा दुखता हुआ माथा दबा रहे थे। एक ज्वरग्रस्त रोगी की सेवा कर रहे थे।...

जाने शरीर में एकदम ऊर्जा नहीं थी या मन एकदम हिलना नहीं चाहता था; पर विवेक ने चेताया।... मेरी आँखें खुल गईं। ... गाड़ी पूरे वेग से भागी जा रही थी। बाहर भरपूर अंधेरा था । डब्बे के इस खंड में मात्र मार्ग के बीच एक हल्का नीला बल्ब जल रहा था। सब लोग औंधे-सीधे सो रहे थे ...

''कोई नहीं देख रहा।'' मेरे मन में किसी ने ज़ोर से कहा।

इच्छा हुई कि मैं तुम्हारी गोद में सिर टिका कर पूरी तरह लेट जाऊँ ... पर तभी मेरे विवेक ने एक जोर का चाँटा मारा। कहा कुछ भी नहीं।

मैं संभल गई। आँखें खोल दीं। तुमने भी आँखें खोलीं। मुझे देखा। कहा कुछ भी नहीं।

''लगता है, ज्वर बढ़ रहा है।'' पता नहीं, मैं तुम्हें सूचना दे रही थी या अपनी झेंप मिटा रही थी।

तुम्हारी आँखों में कुछ भी नहीं था : न बह जाने की तत्परता, न समेट लेने का आवेश। बड़े मैटर ऑफ फैक्ट तरीके से, जैसे मानवीय दायित्व से भरी मैत्री से तुमने पूछा, ''ज़्यादा तकलीफ हो तो सिर दबा दूँ ?''

''नहीं।'' मैंने कहा और फिर जैसे अपने-आप ही मुख से निकल गया, ''अपना रुमाल बांध दो।''

तुमने अपनी जेब से रुमाल निकाला और खड़े हो कर मेरे माथे पर कस कर बांध दिया। एक बार मेरे माथे और सिर को अपने हाथ से टटोला, जैसे जांच कर रहे हो।

तभी सामने बैठे, ऊँघते सरकार ने अपनी आँखें खोल दीं। तुमने तनिक भी संकोच नहीं दिखाया। तुम्हारा व्यवहार एकदम उस डाक्टर का सा था, जो घायल को पट्टी बाँध रहा हो।

''माथा में बैथा है ?'' सरकार ने पूछा।

मैंने बिना कोई उत्तर दिए, आँखें बंद कर लीं।

''हाँ ।'' तुमने छोटा सा उत्तर दिया, ''किसी के पास कोई टेबलेट होगी क्या ?''

''बोलने नाईं शोकता।'' सरकार फिर से ऊँघ गया।

तुम बैठ गए। मैंने अपना सिर तुम्हारे कंधे पर टिका दिया। तुमने भी नीन्द से बोझिल आँखें मूंद लीं।

मेरा सारा शरीर कैसा तो हो रहा था। रोम-रोम जैसे पिघला जा रहा था। मेरा विवेक खड़ा मेरी ढीठ कामना को घूर रहा था, पर कह कुछ नहीं रहा था। फिर शायद उसने घूरना भी बंद कर दिया। मेरा शरीर जैसे लोहे के चूर्ण का ढेर हो गया था, जो तुम्हारे शरीर की चुंबक की ओर खिंचा चला जा रहा था। मेरे रोके से वहाँ कौन रुकता था। मेरा सिर तुम्हारे कंधे से तुम्हारी गोद में ढुलकता जा रहा था। तुम्हारे हाथ मेरे शरीर को संभाल रहे थे। तुम्हारे स्पर्श में इतनी कोमलता थी, जितनी शायद जौहरी के हाथ में कोहे-नूर को पकड़ते हुए भी नहीं होती होगी। मैं अपने ज्वर पर मुग्ध होती जा रही थी.

सुबह तक मेरा ज्वर पूर्णत: प्रकट हो गया... सब जान गए कि रात भर तुम मेरी सेवा-सुश्रूषा करते रहे थे। डॉ. सिंह की भी परिहास वाली मुद्रा अब गंभीर हो चुकी थी। मिस बैनर्जी ने कहा भी, ''तुम ऐकला काहे पोरेशान होता रहा। हाम को जागाया काहे नाहीं हीरो ?''

''सोचा, आपकी नींद खराब कर विलेन क्यों बनूं ।'' तुमने उत्तर दिया था ,''और इसे ज्वर है कहाँ; वह तो नाटक को पुरस्कार न मिलने का क्रोध है, जो इसके शरीर को तपा रहा है।''

''उँह।'' प्रमिला ने मुँह बिचकाया था।

मैं डरी हुई थी। कहीं वह यह न कह दे,''संस्कृत नाट्य शैली में इसे काम-वेदना कहते हैं।''

किंतु उसने ऐसा कुछ नहीं कहा। मैं समझ रही थी कि उसके मन में कैसी भट्ठी जल रही थी।

****

तुम्हारा रुमाल मेरे माथे पर बंधा-बंधा ही मेरे साथ आ गया था। मैं अब नियमित रूप से बीमार थी। अपने घर में बिस्तर पर पड़ी थी। दवा खा रही थी। दिन में एक बार डाक्टर आता था, और एक बार कोई घर से जा कर डाक्टर को हाल-चाल बता आता था। मैं दिन भर पड़ी-पड़ी या तो तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करती थी। या सोचती थी कि आखिर उस रात गाड़ी में मुझे क्या हो गया था ? ... मैं कैसे इतना साहस कर सकी ? सोचती हूँ तो लज्जा से लाल हो जाती हूँ । ... कैसे मैंने अपने सिर को तुम्हारी गोद में डाल दिया था।... और मेरा मन तो उससे कहीं आगे जाने को तैयार बैठा था। तुम्हारे व्यवहार की मेड़ ने उसे रोक रखा था। ... ज्वर की आड़ न होती तो आज मैं लाज से ही मर गई होती। ...

तुम तीसरे दिन मेरे घर आए थे। तुम्हारी आहट पाते ही मेरा सारा शरीर पानी-पानी हो गया था । कैसे सामना करुँगी तुम्हारा।... तुम्हारी आँखें कैसे तो मुझे देखेंगी। ... तुम्हारे हाथों की शीतलता पाने के लिए, मेरे रोम-रोम जैसे अंगारे के समान तप रहा था। ... क्या तुम मेरे पास मेरी चारपाई पर बैठोगे ? क्या मैं अपना सिर ...

(क्रमश: अगले अंक में समाप्त)

सतीश सिंह

आदिवासियों का प्रणय पर्व भगोरिया

आधुनिकता का लबादा ओढ़कर हम धीरे-धीरे अपनी सभ्यता, संस्कृति, परम्परा और पहचान को भूलने लगे हैं, जबकि हमारे रीति-रिवाज हमारे लिए संजीविनी की तरह काम करते हैं। हम इनमें सराबोर होकर फिर से ऊर्जस्वित हो जाते हैं और दुगने रफ्तार से अपने दैनिक क्रिया-कलापों को अमलीजामा पहनाने में अपने को सक्षम पाते हैं।

फाल्गुन महीने में ठीक होली से पहले मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले और उसके आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी प्रणय पर्व ''भगोरिया'' को पूरे जोश-खरोश के साथ मस्ती एवं आनंद में डूबकर मनाते हैं। इस समुदाय के बीच बाज़ार को ''हाट'' कहा जाता है, जो एक निश्चित अंतराल पर लगता है, जिसमें इनके ज़रूरत की हर वस्तु उपलब्ध होती है।

भगोरिया पर्व का इस हाट से अटूट संबंध है, क्योंकि इस पर्व की शुरुआत फाल्गुन महीने में लगने वाले अंतिम हाट वाले दिन से होता है। लगभग सात दिन तक चलने वाले इस पर्व में ज़बरदस्त धूम-धाम रहती है। उस क्षेत्र में अवस्थित सभी गांवों व कस्बों से आकर आदिवासी इस पर्व में शामिल होते हैं। युवाओं की मस्ती देखने लायक रहती है।

हाट में हर प्रकार की दुकान होती है। पान, गुलाल और शृंगार के दुकानों में खूब चहल-पहल रहती है। युवाओं के वस्त्र भड़कीले और अपने प्रियतम या प्रियतमा को आकर्षित करने वाले होते हैं। मुँह में पान का बीड़ा या हाथों में कुल्फी का मजा लेते हुए युवक-युवतियों तथा किशोर-किशोरियों को आप आसानी से हाट में देख सकते हैं। पूरा माहौल हँसी-ठिठोली व मस्तीभरा रहता है। आदिवासी बालाओं से छेड़खानी करने वाले आदिवासी युवाओं को इस तरह के कृत्य को करने के कारण कोई सज़ा नहीं दी जाती है। इतना ही नहीं इस तरह की हरकतों को कोई बुरा नहीं मानता है, क्योंकि यह सब उनकी रीति-रिवाज का हिस्सा होता है।

रंग और गुलाल से लोग इस कदर एक-दूसरे को रंग देते हैं कि कोई पहचान में नहीं आता। संगीत तथा लोक नृत्य के मदभरे माहौल में सभी उमंग व उल्लास में थिरकते नज़र आते हैं। व्यापक स्तर पर मिठाई व नमकीन खरीदी जाती है। घर में पकवान बनाए जाते हैं। खुले मैदान में बैठकर मांस व मदिरा का सेवन किया जाता है।

आदिवासियों के लिए इस पर्व की महत्ता अतुलनीय है। इस पर्व में अपनी सहभागिता के लिए दूसरे प्रदेश में या प्रदेश के दूर-दराज इलाकों में रहने वाले आदिवासी भी अपने गाँव या कस्बे लौट जाते हैं, क्योंकि ''भगोरिया'' सिर्फ उनके लिए त्योहार का पर्याय नहीं है। इस पर्व में वे अपने जीवन साथी का चयन भी करते हैं। इसलिए इस पर्व का महत्त्व स्वत: बेशकीमती हो जाता है।

पर्व के दौरान युवा सज-धजकर अपने प्रस्तावित जीवन साथी को पान का बीड़ा खिलाते हैं। यदि कोई युवती पान का बीड़ा खाने के तैयार हो जाती है तो माना जाता है कि वह विवाह के लिए तैयार है। इस मूक सहमति के बाद दोनों अपने घर से भाग जाते हैं। आमतौर पर कोई इसका प्रतिवाद नहीं करता है। फिर भी परिवार द्वारा विरोध की स्थिति में पंचों के हस्तक्षेप के बाद ही उनका विवाह सम्भव हो पाता है।

पान का बीड़ा खिला कर अपने प्रेम का इज़हार करने के अलावा इस इलाके के आदिवासी समुदाय में अपनी प्रेमिका को चूड़ी पहनाकर भी अपने प्रेम को प्रकट करने का चलन है। किसी युवती को कोई युवक चूड़ी पहना देता है तो माना जाता है कि वह उसकी पत्नी बन गई।

कुछ सालों से इस पर्व के प्रति आदिवासियों की उदासीनता स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर हो रही है। आदिकाल से चली आ रही यह परम्परा अब उनको महज एक गन्दा और भौंडा प्रर्दशन लगने लगा है। इस तरह के विचार को भारतीय समाज के लिए विडम्बना ही माना जा सकता है, क्योंकि आधुनिकता की बयार में हम अपनी जड़ों से कटते जा रहे हैं, जो निश्चित रूप से हमारे समाज के अस्तित्व के लिए घातक है।

*

satish5249@gmail.com

अधेड़ उम्र में थामी कलम

श्रद्धांजली 'दामिनी' को

उषा देव

इंसान के रूप में कुछ हैवान समाज में रहते हैं
उनके ज़ुल्मों सितम को बस मासूम लोग सहते हैं
कोमल सुकुमार कली का दोष क्या था कोई कहे
क्यों शैतानों के हाथों उसने असीम दु:ख दर्द सहे
काली रात में उन गुण्डों का जैसा नंगा नाच हुआ
कैसे देखा तुमने भगवन जो मासूम के साथ हुआ
दामिनी दमकी तो होगी पर जब बादल हों छाए घने
कितना चमके, कितना गरजे, कैसे उसकी बात बने
सुना है शादी की तैयारी करती-फिरती थी नादाँ
पिया के घर जाना था स्वाभिमानिनी चली गई कहाँ
माँ के दिल पर क्या बीती, यह सब माताएँ हैं जानती
छाती फटती होगी उसकी, दर्द सभी हैं पहचानती
चमक रही है दामिनी गगन में बन चमकता तारा
सदा तुम्हारी जीत सृष्टि में, भारत देश तुम से है हारा

*

बारिश

ऊषा बधवार

नन्हीं- नन्हीं बूंदें बादलों की ओर से
इठलाती, मचलती हुई आकर
धरती की गोद में समा जाती हैं
तुम्हारे आने से कोयल कूक करती
मोर पपीहा नाच उठते
रंग बिरंगी तितलियाँ फूलों के साथ
खेलती, मचलती, इठलाती, झूमती
भंवरे रंग बिरंगे फूलों पर
झूम-झूम बातें करते, रस पान करते
तुम्हारे आने से चारों तरफ हरियाली
की एक अनुपम छटा दिखलायी देती
जब तुम इस धरती की गोद में
आकर उसको आत्म विभोर करके
जन जीवन को तृप्त कर देती हो.....
जी चाहता है घंटों बैठकर
तुम्हारे आने का स्वागत करूं
तुम्हें निहारती रहूँ
अगर तुम न आओ तो
जन जीवन नीरस और अर्थहीन हो जाए।

*

नव अंकुर

सच की राह

तन्वी सिंह

सच की राह पे चलते हैं जो,
करते नहीं वो किसी का मोह,
सच ही है ऐसी चीज़,
जिसकी होती हमेशा जीत,
सच को छोड़ते है जो,
प्रतिष्ठा को खोते है वो,
चाहे हो तुम धनी या हो भिखारी,
बने रहो तुम सच के पुजारी,
सच छुपाए से ना छुपा है कभी,
ये बातें जान लें सभी,
सच की राह में है हज़ारों काँटे,
सच्चे इन्सान का दर्द कोई ना बाँटे,
डर के तुम सच का साथ ना छोड़ो,
अपने सच की राह को
कहीं और ना मोड़ो,
जिसकी राहों में सचाई है,
जिसके हृदय में अच्छाई है,
जब कोई न होगा साथ तेरे,
तब ईश्वर होगा पास तेरे ,
होगी तब तेरे सच की जीत,
तो दुनिया कहेगी
सच ही है जिंदगी की प्रीत।

*

tanviara8@gmail.com

चादर

शीतल

चादर कुछ मैली सी है
कायदे से तो दागदार....यही कहना सही है।
फिर भी उससे नज़र मिला रहा हूँ,
किस्मत का धनी हूँ मैं यह जश्न मना रहा हूँ
इतनी मिट्टी लिए चादर मेरी यहाँ तक आ गई
एक मौका दो मुझे, इस की सफ़ाई, धुलाई का
वह बोला कि क्या करोगे मौका पाकर
जो इतने साल न कर सके,
क्या कर पाओगे कुछ और पल लेकर,
यह वक्त है जवाबदेही का।
तुम अपनी चादर संभालो
यह मुखौटा उतारो ऊपर करो सिर अपना
और जवाब दो वक्त को।
तुम अपनी चादर को देखो
यह सूखे गजरे के पत्ते हैं
किसको किया था वादा
और किसके फूल सींच आये तुम
कलंक है यह तुम्हारी चादर का,
यह कैसी गद्दारी तुम कर आये.....
अब चादर को झाड़ने का क्या फायदा
आँखों की धूल तो छटने न पायेगी
जन्मों की मेहनत ख़ाक में उड़ा दी तुमने
अब कोई भी क्षतिपूर्ति न होने पायेगी।
दे पाओगे जवाब वक्त को.....
चादर तो मैली है मैली ही रहेगी .....

*

sheetal.einstein@gmail.com

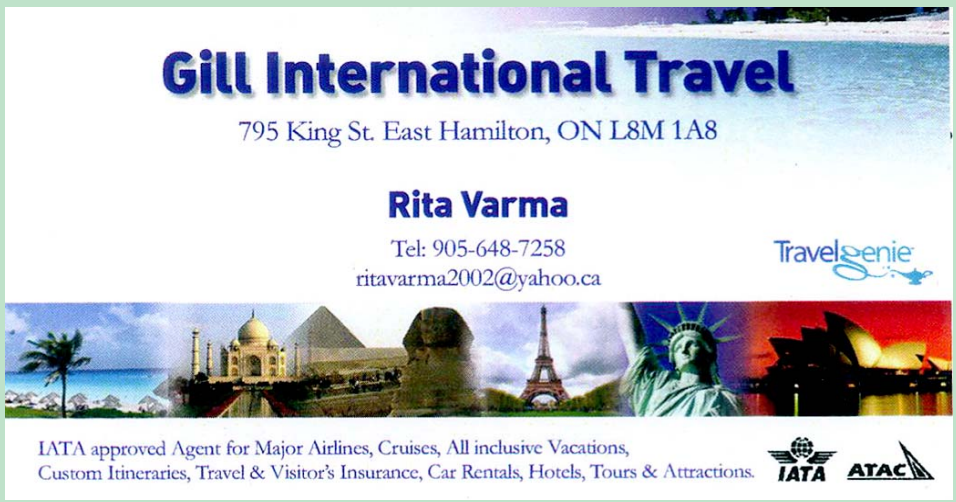

Beacon Signs 1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 **Fax: (905) 678-1271**

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

संवेदनशील मन की साहसिक कहानियाँ

डॉ. करुणा शंकर उपाध्याय

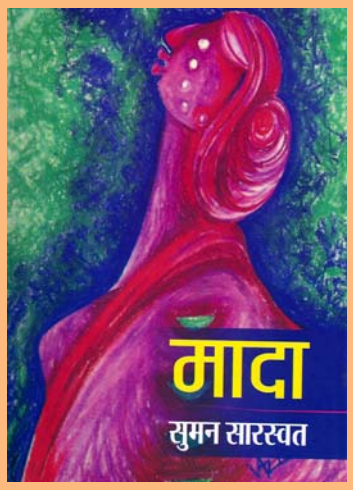

मादा (कहानी संग्रह)
लेखिका -सुमन सारस्वत
प्रकाशक- शिल्पायन
मूल्य 200.00

'मादा' सुमन सारस्वत की 12 कहानियों का संकलन है। इसमें स्त्री विमर्श की झंडा बरदारी के बिना स्त्री जीवन की समस्याएं उसकी अपनी सोच, उसका बहुस्तरीय शोष , उसके अपने अन्तर्द्वन्द्व तथा नारी जीवन की पूंजीभूत करुणा और त्रासदी के साथ अभिव्यक्ति हुई है। ये कहानियाँ शब्दों के माध्यम से व्यवस्था पर चोट करती हैं और नारी की मनुष्य रूप में प्रतिमा गढ़ती हैं ।

संग्रह की पहली कहानी है, ''सौभाग्यवती'', जिसमें कल्पना काकी जिग्नेश काका के मरे हुए बच्चे को जन्म देती है और अस्पताल में ही उसकी मौत हो जाती है। कल्पना काकी को पहले भी दो बार बच्चे हुए पर वे समय से पहले हुए थे इसलिए मर गये ।अब कल्पना काकी की मृत्यु पर जिग्नेश काका इसलिए अपनी पत्नी की अर्थी के साथ श्मशान नहीं जा रहे क्योंकि उन्हें वंश चलाने के लिए दूसरा विवाह जो करना है, यह जानकर नन्हीं निम्मी का मन क्षोभ से भर जाता है और उसके द्वारा उठाया गया सवाल समूचे समाज को आईना दिखा देता है। 'कल्पना' काकी तो उनके लिए बच्चा पैदा करते- करते मरी न..... कल्पना काकी ने उनके लिए अपनी जान दे दी.. मगर काका के लिए उनके बलिदान की कोई कीमत नहीं । उनको बस एक बच्चे की पड़ी है... और जो बच्चा पैदा ही नहीं हुआ उसके लिए एक औरत को अपने पति के हाथ से अपनी मौत का हक़ भी नहीं मिलेगा। मम्मी ये कैसा खिज है? ये कैसी इंसानियत है कि किसी औरत की चिता को उसके अपने पति के रहते कोई और आग लगाये ? ये प्रश्न हमारे समाज की गलाजत पर बड़ी गहरी चोट करते हैं । नारी जाती के प्रति भारतीय समाज के दोगले रवैये पर यह बेलाग टिप्पणी काबिले गौर है ।

लेखिका ने बड़ी समझदारी से वैश्वीकरण के दबावों से उत्पन्न समस्याओं का भी चित्रण किया है । वर्तमान सदी जो वैश्वीकरण और बाजारीकरण के रथ पर सवार होकर आयी है उसने मानवीय सम्बन्धों का पुनर्धुवीकरण कर दिया है इस सन्दर्भ में लेखिका का समाजशास्त्रीय चिंतन दर्शनीय बन पड़ा है । 'इक्कीसवीं सदी की इस पीढ़ी के पास एक रास्ते पैसा आया तो उसे भोगने के लिए कई विकल्प भी हैं - लिविंग टुगेदर, सात फेरों के बिना कोई बंधन निभाए साथ रहो जब खटपट होने लगे तो अपनी अलग राह पकड़ लो। मगर आज को जी खोलकर भोगते -भोगते जब ये पहली युवा पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को कैसा 'आज' देगी यह तो आने वाले कल में ही छिपा है , 'इस तरह इस परिवेश व् लेखकीय सोच के सूक्ष्म अंकन से यह कहानी पाठकों का विश्वास अर्जित करती है। 'तिलचट्टा' कहानी स्त्री- पुरुषों सम्बन्धों की जटिलता एवं विकृतियों को पेश करता है ।'मादा' इस संग्रह की सबसे लम्बी कहानी है जिसमें नारी की नियति, उसकी दारुण वेदना तथा त्रासदी को शुचिता के माध्यम से बखूबी उभारा गया है। आज यह चिकित्साविज्ञान द्वारा स्थापित सत्य है कि लड़के के जन्म के लिए पुरुषत्व ही जिम्मेदार होता है । बावजूद इसके हमारा दकियानूसी समाज एक से ज़्यादा लड़की जन्मने पर इस स्थिति के लिए नारी को ही पद- पद पर लांछित एवं अपमानित करता है। इसके आलावा वह नारी से नौकरी व् कमाई की अपेक्षा करता है । लेखिका ने बड़े कौशल के साथ इन्हीं प्रश्नों के इर्द गिर्द उक्त कहानी को रचा है जिसमें परिस्थितियों का विश्वसनीय ब्यौरा अंकित किया गया है। यहाँ कहानी उबाऊ न होकर बेहद पठनीय और रोचक बन पड़ी है ।

इसी क्रम में 'डोंट टेल टू आंद्रे' आत्म कथात्मक शैली में लिखी गयी गोवा का यात्रा वृतांत प्रस्तुत करने वाली कहानी है जिसमें रूसी स्त्रियों के माध्यम से दिखाया गया है की दुनिया में स्त्रियों की दशा एक जैसी है । लेखिका ने 'दुनिया की सबसे खुबसूरत औरत' शीर्षक कहानी में मुम्बई की लोकल ट्रेन में अपनी बच्चे को दुग्धपान करा रही भिखारिन स्त्री के वात्सल्य को अतिशय व्यापक सौन्दर्य बोध प्रदान किया है । उसे मातृत्व के भाव के अंतर्गत निहाल देखकर लेखिका दुनिया की सबसे खुबसूरत औरत की संत्रास से भी अभिहि करती है। इस संग्रह की अधिकाँश कहानियों के पात्र मुम्बई की महिलाएँ हैं जिनमें नारी जीवन की त्रासदी, संघर्ष, विडम्बना, भयावह स्थितियों, संकल्पों, उपलब्धियों के साथ उनके मनोविज्ञान का भी सार्थक रूपायन हुआ है । 'काश ! उनकी माँ भी मेरी माँ जैसी होती। कहानी में मुम्बई की स्त्रियों के आपसी झगड़ों के दौरान प्रयुक्त होने वाली गालियों का चित्रण किया गया है। लेकिन बड़े साहस के साथ यह दिखाया गया है कि निम्न वर्ग , मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की स्त्रियाँ आपसी झगड़े के वक्त एक जैसी गालियों का प्रयोग करती हैं । इस दौरान उनकी वर्गीय चेतना बिखर जाती है । प्रस्तुत संकलन की अंतिम कहानी 'मुआवजा' मनुष्य के अंतहीन लालच की दास्ताँ ब्यान करती है ।

संकलन की कहानियाँ नारी विमर्श के घोषित नारे से बचकर भी स्त्री जीवन के तमाम सन्दर्भों को बड़ी सूक्ष्मता से रेखांकित करती है यहाँ मुम्बई के स्त्रियों की अनेक चित्तवृत्तियाँ, संघर्ष, त्रसाद,स्थितियाँ, ज़िन्दगी की जद्दोजहद बड़े स्वाभाविक और साहसी तेवर में व्यक्त हुयी हैं । ये कहानियाँ अपनी अभिव्यक्ति में अत्यधिक सटीक एवं सरल -स्वाभाविक भाषा में रची गईं हैं । तथा पाठकों के समक्ष चिन्तन के कई मुद्दे छोड़ जाती हैं । संक्षेप में 'मादा' एक तेजस्वी लेखिका के आगमन की सूचना देने वाला कथा संग्रह है ।

*

आनंदकृष्ण

ज़िंदगी की ख़ूबसूरत कविता को भरपूर जीने की ख़्वाहिश

आनंदकृष्ण

कविता बेचैनी से उपजती है। जितनी घनीभूत बेचैनी होगी उतनी सार्थक कविता भी होगी। यह बेचैनी संवेदनशील व्यक्ति को ही हो सकती है, और संवेदनशील होना मनुष्य की पहली और अनिवार्य शर्त है। इसी लिये धूमिल ने कविता को ''भाषा में आदमी होने की तमीज़'' कहा है। कविता, गहन पीड़ादायक अनुभवों से गुज़र रहे रचनाकार की सृजनात्मक चीत्कार है। इस प्रकार प्रत्येक रचनाकार दृष्टा होता है क्योंकि वेदना की शक्ति दृष्टि देती है। जो यातना में होता है वह द्रष्टा हो सकता है (अज्ञेय: शेखर: एक जीवनी) । इस वेदना को अपनी ''सेंसिबिलिटी'' से जितनी शिद्दत से महसूस किया जायेगा उतनी ही पारदर्शी और दूरदर्शी दृष्टि से संपन्न कविता प्रस्फुटित होगी।

सुश्री सुनीता शानू की कविताओं को पढ़ते-गुनते हुए शीतल जल के छींटों-सा ताज़गी भरा अहसास छू-छूकर गुज़रता है। इस जीवंत और स्फूर्त शीतल जल के अंतस में भी गहन पीड़ाएं हैं- पत्थरों से टकराने की पीड़ा, अपने मूलबिंदु से बिछड़ने की पीड़ा, अनजानों के बीच रहने की उत्कंठित पीड़ा, अज्ञात लक्ष्य की ओर बढ़ते जाने की विवश-पीड़ा; किंतु इन सब पीड़ाओं के साथ जीवन देने की, सुख देने की लालसा; पीड़ा के चीत्कार को मधुर गान में परिवर्तित कर देती है। सुनीता जी की सभी कविताएँ इन्हीं पीड़ाओं के चीत्कारों और जिजीविषा के मधुरतम गान का संतुलित समुच्चय है। ये कविताएँ, इसीलिये समकालिक से आगे बढ़ कर

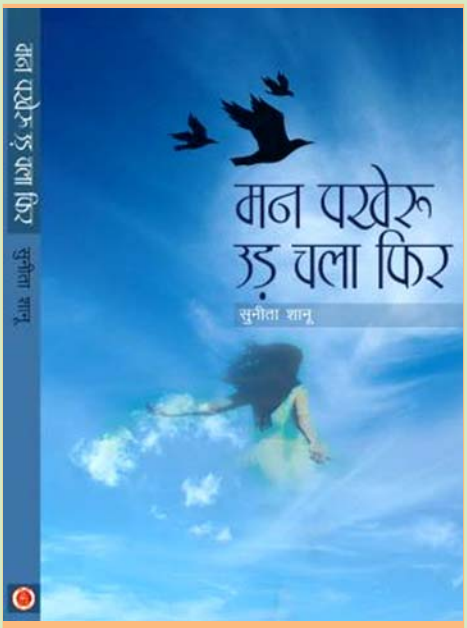

'मन पखेरू उड़ चला फिर',
कवयित्री: सुनीता शानू,
प्रकाशक- हिन्दी युग्म,
नई दिल्ली,
पृष्ठ-127, मूल्य -195 रु

सुनीता शानू

सर्वकालिक हो जाती हैं और मानवीय सरोकारों की सशक्त पैरवी करती हैं। इसी क्रम में उनकी ''उसने कहा'', ''मैं रूठ पाऊँ, ''सुबह का भूला'', ''मलाल'', ''इंतजार'', ''मुखौटे के पीछे'', खबर: दुनिया बदलने की'', ''ए कामवाली- !'' जैसी कविताएँ विशेष दृष्टव्य हैं।

सुनीता का रचना संसार बहुत व्यापक है। उनकी कविताएँ उनके जैसी ही मुखर है और अपने पाठकों व श्रोताओं से सक्रिय व सीधा संवाद करती हैं । कविताओं की यह बहिर्मुखी प्रवृत्ति एक ओर उन्हें ऐकान्तिक अवसाद से बचाती है और दूसरी ओर अपनी कहन को बिना किसी लाग-लपेट के अपने पाठकों को सीधा संप्रेषित कर देती है ।

सुनीता की कविता जीवंतता की, गति की और अजस्र ऊर्जा की दस्तावेज है। इस संग्रह का पहला ही गीत ''मन पखेरू '' उड़ चला फिर...'' इस जीवन्तता की सघनता और गति की दिशा निर्धारित करता है। यह गीत इस संग्रह का शीर्षक गीत है, जिसमें डूबते-उतराते सुनीता की रचना धर्मिता के विविध आयामों का विहगावलोकन किया जा सकता है। इस गीत में ''मन पखेरू'' जहाँ एक ओर आसमान की ऊँचाइयाँ नापने को बेचैन है तो दूसरी ओर हृदय की गहराइयों में दबी मलिनता की ग्रंथियाँ खोलने को आतुर है। एक साथ बहिर्यात्रा और अंतर्यात्रा का ऐसा संगम कम देखने को मिलता है।

''पंछी'' या ''पखेरु'' सुनीता का प्रिय प्रतीक है । पंछी या पखेरु; जीवंतता को, गति को, अजस्र ऊर्जा को, जिजीविषा को और उन्मुक्तता और उत्सवप्रियता के विविध बिम्बों को उनकी रचनाओं में रुपायित करता है । इस संग्रह की कुल बारह कविताओं में ''पखेरू'' ने उड़ान भरी है । ये कविताएं हैं- ''मन पखेरू फिर उड़ चला'', ''आज होली रे'', ''किस पर करूँ विश्वास'', ''सुबह का भूला'', ''डोर'', ''ओढ़ा दी चूनर'', ''गीतिका: ये कौन है'', ''गीतिका: प्यार में अक्सर'', ''मन पखेरु'', ''प्रेम बंधन'', ''मै अपना घर ढूँढती हूँ'', और ''पंछी तुम कैसे गाते हो'' । इन कविताओं में सुनीता के पंछियों- पखेरुओं ने जीवन के मौलिक बिम्ब गढ़े हैं । एक सफ़ल, सार्थक और सक्षम प्रतीक की खोज, सुनीता की बड़ी उपलब्धि है।

सुनीता की रचनाओं का मूल स्वर ''प्रेम'' है। वे प्रेम के विविध आयामों की अनुगायिका हैं। प्रेम

को उन्होने व्यष्टि से समष्टि और अणु से ब्रह्माण्ड तक पहुंचाया । ऐहिक और दैविक प्रेम का चित्रण करने में वे बहुत सफ़ल रही हैं। उनके प्रेम का कैनवास बहुत व्यापक है, जिसमें बचपन के घरौंदे, कच्ची इमली, नीम, पीपल, बरगद, अमलतास, से लेकर माँ, पिता, पुत्र, पति और मित्रों को भी बहुत आत्मीयता और निश्छलता के साथ विषय बनाया गया है । प्रकृति के प्रति उनके प्रेम ने ''अमलतास'' जैसी महत्त्वपूर्ण कविता दी है, तो प्रेम के आध्यात्मिक और पारलौकिक आयाम ने उन्हें ''दर्द का रिश्ता'' कविता रचने के लिये प्रेरित किया है । पूरी बेबाकी और ईमानदारी के साथ उन्होंने प्रेम के ऐहिक, ऐन्द्रिक और सांसारिक स्थूल स्वरूप पर भी कलम चलाई जिससे ''प्रिय बिन जीना कैसा जीना'',''तुम्हारी चाहत'',''श्याम सलोना'', जैसी कविताएँ नि:सृत हुई।

प्रस्तुत संग्रह ''मन पखेरु उड़ चला फिर'' सुनीता शानू का पहला काव्य संग्रह है। इसे पढ़ते हुए यह सुखद आश्चर्य होता है कि यह संग्रह किसी अन्य रचनाकार के पहले संग्रह में आने वाली भाव, भाषा, शिल्प, संयोजन, बिम्ब व प्रतीक विधान, अनुभूति, सम्प्रेषण आदि की बड़ी और गंभीर त्रुटियों से लगभग पूरी तरह से मुक्त है। वास्तव में वे समकालिक दौर की बेहद सतर्क और चिंतनशील रचनाकार हैं। उनकी काव्यधारा में प्रेम की शीतल फुहारें हैं तो समकालीन विद्रूपों के खिलाफ विद्रोह के तीखे तेवर भी दिखाई देते हैं। उनकी सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ सुपरिचित पोलिश कवयित्री विस्लावा शिम्बोर्स्का की याद दिलाती है । शिम्बोर्स्का की भाँति सुनीता जी की रचनाओं में बड़ी-बड़ी थोथी व सैद्धान्तिक बातों का अभाव और मर्मस्पर्शी शब्द चित्रों का बाहुल्य है। जो खामोश ज्वालामुखी शिम्बोर्स्का की रचनाओं में धधकता है, उसकी गहरी आँच सुनीता की रचनाओं में भी मिलती है। जहाँ एक ओर शिम्बोर्स्का अपनी कविता ''डिस्कवरी'' में कहती है-

मैं शामिल होने से इंकार करने में विश्वास करती हूँ, मैं बर्बाद जीवन में विश्वास करती हूँ, मैं कर्म में खर्च हुए समय में विश्वास करती हूँ, मेरी आस्था अडिग है, अंधी और निर्लिप्त।

वहीं सुनीता शानू अपनी कविता ''जीना चाहती थी मैं'' में पूछती है-''दीमक भी पूरा नहीं चाटती/ ज़िंदगी दरख्त की / फिर तुमने क्यों सोच लिया/ कि मैं वजह बन जाऊँगी/ तुम्हारी साँसों की घुटन/ तुम्हारी परेशानी की/ और तुम्हें तलाश करनी पड़ेगी वजहें/ गोरख पांडे की डायरी या फिर/ परवीन शाकिर के चुप हो जाने की/ ये सच है मैं जीना चाहती थी/ तुमसे माँगी थी चंद सांसें-वो भी उधार।

सुनीता ने अपनी कविताओं में उस दुनिया को प्रस्तुत किया है जो सामान्य जन की दुनिया है। इस दुनिया में प्रेम है, संघर्ष है, भूख है, अभाव है और इन सबके साथ आत्मीय उत्सव-धर्मिता है। उनकी कविताएँ सामान्य जन के सरोकारों से जुड़े प्रश्न सीधी-सरल भाषा में पूरी सादगी के साथ उठाती हैं। उनकी कविताओं में हर्ष-उल्लास, उम्मीद-हताशा, जीवन, मृत्यु, यथार्थ, संशय, प्रकृति, आस्था जैसे भावों के साथ मानवीय संवेदनाओं का आश्वस्त करता हुआ उष्ण स्पर्श भी है। वे जीवन के जयघोष का उत्सव मनाती हैं किन्तु इस उत्सव में वे अपनी जिम्मेदारियों के प्रति भी पूर्णत: सचेत हैं। उनकी समग्र चिंताएँ मानव मात्र के लिए हैं।

''स्त्रीविमर्श'' समकालीन वाङमय में महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रुप में तेज़ी से उभरा है हालाँकि इसकी जड़ें बहुत गहरे तक और बहुत दूर तक फैली हुई है। एक जागरूक रचनाकार के रुप में सुनीता ने भी स्त्रीविमर्श पर अपने मौलिक तर्कों और मान्यताओं के साथ चिंतन किया है। निष्कर्षत: स्त्री विमर्श पर उनका सुस्पष्ट, सुचिंतित मौलिक दर्शन उनकी कविताओं मे निरायास ही उतर आया है। वे स्त्री के स्त्रीत्व की गरिमा से गौरवान्वित है किंतु स्त्रीविमर्श के नाम पर स्त्री को तमाशा बनाने के खिलाफ हैं। उनके दृष्टिकोण, उनकी कविताओं- ''तो फिर प्यार कहाँ हैं'', ''तुम ऐसे तो न थे'', ''मेरे मालिक'',''डोर'',''चिह्न'',''कन्यादान'', आदि कविताओं में परिलक्षित होता है।

इसी क्रम में मैं इस संग्रह की रचना ''जन गीत: कोई शिल्पकार यहाँ आएगा'' का उल्लेख अलग से तथा विशेष रूप से करना चाहूँगा। यह असाधारण लंबी कविता पूरी मानव सभ्यता के प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान तक के दौरान स्त्रीविमर्श की गहरी पड़ताल करती है और सारे विद्रूपों, विसंगतियों, प्रताड़नाओं और संघर्षों का संयत चित्रण करते हुए नई आस्था और विश्वास स्थापित करती है। इस रचना के लिये केवल यही कहा जा सकता है कि ऐसी रचनाएं ''लिखी'' नही जाती, ''लिख'' जाती है। यह कविता संदेश देती है कि हम पूर्वजों की गलतियों को मिटा नही सकते पर किसी न किसी तरीके से उनका प्रायश्चित करके उन्हें हलका अवश्य कर सकते हैं। पारंपरिक स्त्री विमर्श के पक्षधर तथा स्त्रीवादी इस कविता की मान्यताओं और स्थापनाओं से नाइत्तफ़ाकी रख सकते है किंतु इस रचना के सिद्ध व्यावहारिक दर्शन को नकारा नहीं जा सकता। इस संदर्भ में मुझे नथानियल हॉर्थन की कालजयी औपन्यासिक कृति ''द स्कारलैट लैटर'' याद आती है जो सन 1850 में प्रकाशित हुई थी और आज 162 वर्ष बीत जाने के बाद भी प्रासंगिक बनी हुई है। इस उपन्यास में ''बाइबिल'', ''पिलग्रिम्स प्रोग्रेस'' आदि पौराणिक व पुरा-ऐतिहासिक ग्रंथो का प्रभाव है। स्त्री विमर्श की प्रारम्भिक रचनाओं में, अनेक असहमतियों के बावजूद, इसका सम्मानीय स्थान है। सुनीता के जनगीत ''कोई शिल्पकार यहाँ आएगा'' में भी ''रामायण'', ''महाभारत'' जैसे धर्मग्रंथों को आधार बनाकर स्त्री पर यथार्थपरक विमर्श किया गया है।

सुनीता की कविताओं का यह पहला संग्रह उनके लिये तो महत्वपूर्ण है ही साथ ही समग्र हिंदी कविता संसार के लिये भी महत्वपूर्ण है। इस संग्रह में भविष्य की एक द्रष्टा और जीवंत कवयित्री की पदचाप सुनाई दे रही है। ये संभावनाओं के स्वर पूर्णत: जीवंत हो सकें और अनंत आसमान को नापने की इच्छा रखने वाला पखेरु अपने लक्ष्य को प्राप्त करे, यही कामना है। ज़िंदगी की खूबसूरत कविता को भरपूर जीने की ख्वाहिश करने वाले सुनीता शानू के ''मन पखेरू'' की यह पहली उड़ान सधी हुई, संतुलित तथा आत्म विश्वास से भरी हुई है। यह आशा की जानी चाहिये कि अपनी इस उड़ान में तथा भविष्य में होने वाली उड़ानों में यह मन पखेरू जीवन के आसमान की नई-नई बुलंदियों तक पहुंचेगा और नए रहस्यों का अन्वेषण करेगा। फिलहाल सुनीता जी के लिये प्रख्यात शायर डॉ. बशीर बद्र का ये शेर मुलाहिज़ा फरमाएँ...

चमक रही है परों में उड़ान की खुश्बू।
बुला रही है बहुत आसमान की खुश्बू।

anandkrishan@yahoo.com

*

पुस्तकें जो हमें मिलीं

हिन्दी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्न पुस्तकों को प्रकाशित किया है। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपए रखा गया है-

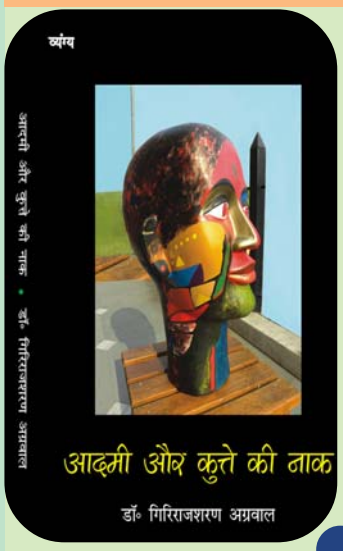

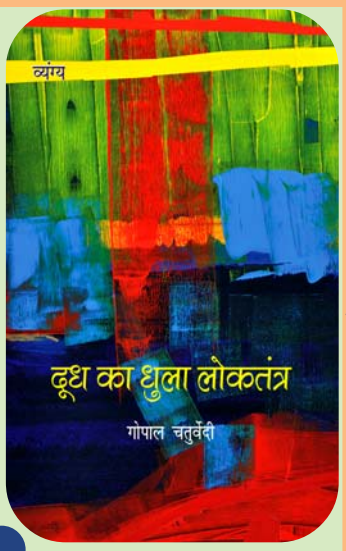

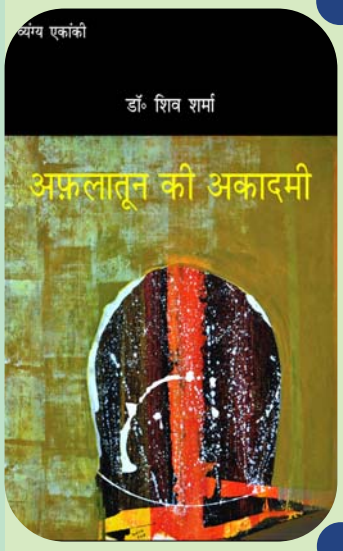

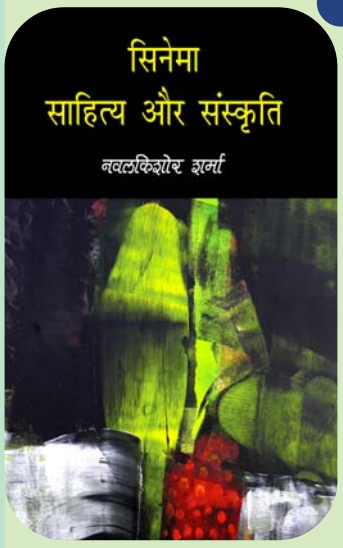

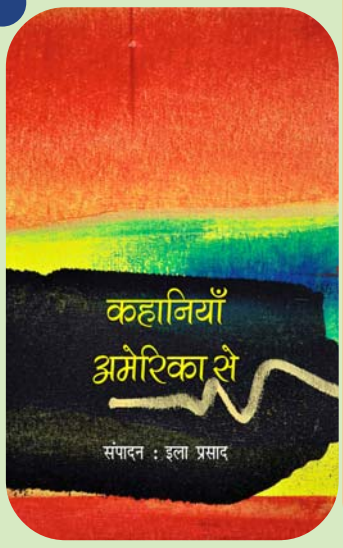

कहानी

कमरा नंबर 103 : सुधा ओम ढींगरा

इमराना हाज़िर हो : महेशचंद्र द्विवेदी

कहानियाँ अमेरिका से : सं. इला प्रसाद

कुत्तेवाले पापा : मीना अग्रवाल

प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ :

सं. डॉ. कमलकिशोर गोयनका

लघुकथाएँ मानव-जीवन की :

सं. सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र : गोपाल चतुर्वेदी

आदमी और कुत्ते की नाक :

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

सच का सामना : हरीशकुमार सिंह

व्यंग्य-एकांकी

अफलातून की अकादमी :

डॉ. शिव शर्मा

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति :

नवलकिशोर शर्मा

सलाहकार मंडल :

प्रो. मोहन श्रोत्रिय,

नंद भारद्वाज,

प्रो. अशोक चक्रधर,

नवलकिशोर शर्मा,

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रथम संस्करण :

फरवरी 2013

आवरण छायाचित्र :

श्री मनोज कचंगल, ग्रेटर नोएडा

प्रकाशक :

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,

बिजनौर (उ.प्र.) 246701

दूरभाष : 01342-263232,

0124-4076565, 07838090732,

09412712789

मुद्रक :

आदर्श प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110032

मूल्य :

पचास रुपए मात्र

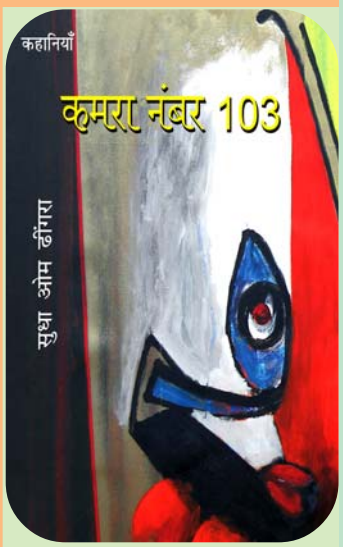

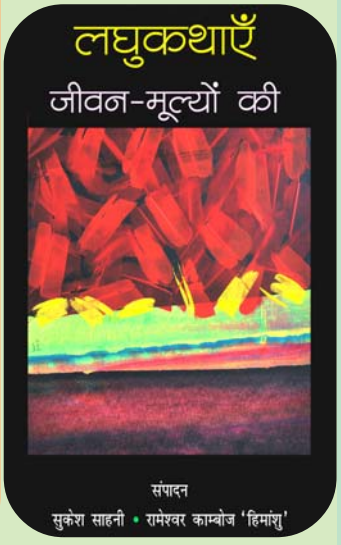

हम साथ-साथ हैं — हमसफ़र पत्रिकाओं के नये अंक.....

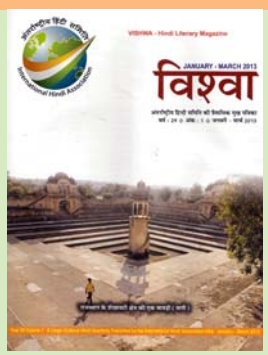

विश्वा

अंतरराष्ट्रीय हिन्दी समिति की
त्रैमासिक पत्रिका
प्रबन्ध संपादक-
डॉ. रवि प्रकश सिंह
प्रधान संपादक -
रमेश जोशी
joshikavirai@gmail.com

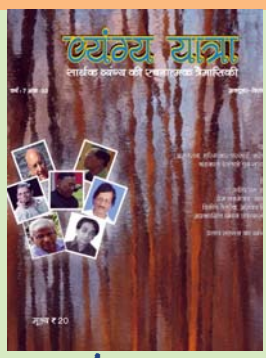

व्यंग्य यात्रा

सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक
त्रैमासिकी
संपादक -
प्रेम जनमेजय
सम्पादकीय संपर्क -73, साक्षर
अपार्टमेंट्स , ए -3, पश्चिमी विहार,
नई दिल्ली -110063

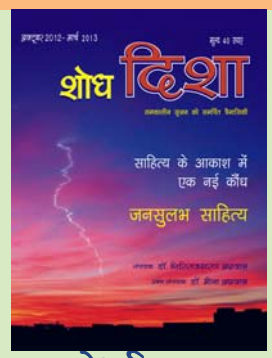

शोध दिशा

समकालीन सृजन को समर्पित त्रैमासिकी
संपादक -
डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल
सम्पादकीय कार्यालय
हिन्दी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार,
बिजनौर
246701(उ० प्र०)

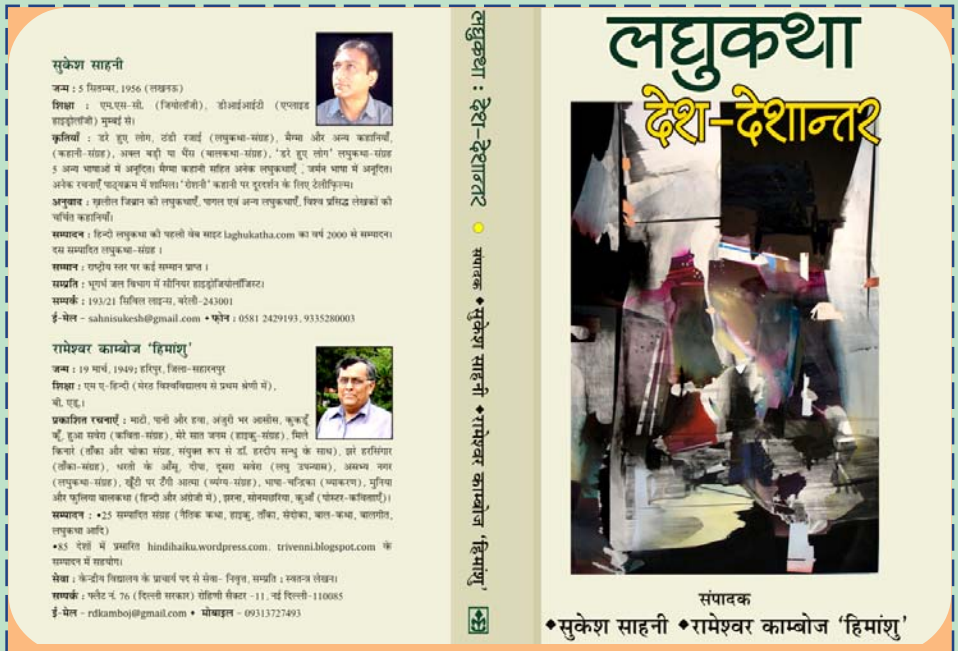

हिन्दी चेतना परिवार ने अक्तूबर के अंक लघुकथा विशेषांक को पुस्तक स्वरूप दिया है। जिसे आप निम्न पते पर खरीद सकते हैं।

लघुकथा देश-देशान्तर, सम्पादक-सुकेश साहनी-रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' पृष्ठ:175(सजिल्द), मूल्य: 300 रुपये, संस्करण :2013, प्रकाशक: अयन प्रकाशन, 1/ 20, महरौली, नई दिल्ली-110030, मोबाइल-098189-88613
ई मेल-ayanprakashan@rediffmail.com

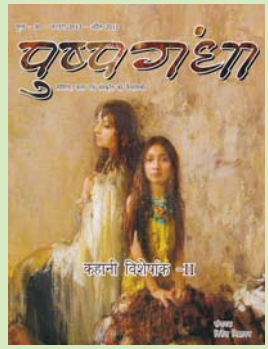

पुष्पगंधा

साहित्य, कला एवं
संस्कृति की त्रैमासिकी
कहानी विशेषांक-२
संपादक-
विकेश निझावन
557-बी, सिविल लाइंस,
आई.टी.आई बस स्टॉप के सामने,
अम्बाला शहर -134003
(हरियाणा)

BEST DEALS FLOORING

Residential & Commercial

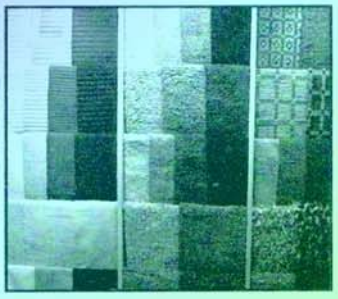

Free Delivery
Under Pad
Installation

Residential
Commercial
Industrial
Motels & Restaurants

Free Shop at
Home Service Call:
416-292-6248

WE ALSO SUPPLY

• Base Boards • Quater Rounds • Mouldings • Custom Stairs • All kinds of Trims • Carpet Binding Available

FREE - Installation - Under Padding - Delivery

Call: RAJ OR GARY 416-292-6248

130 Dynamic Drive, Unit #21, Scarborough, ON M1V 5C9

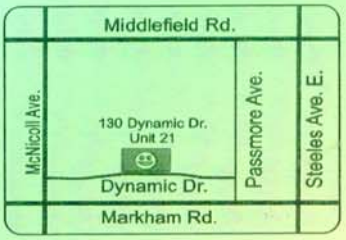

Custom Blinds • Ciramic Tiles • Hall Runner

Direct: 416-953-6233
Office: 905-201-9977

HomeLife/Future Realty Inc.,
Brockerage
Independently Owned and Operated

Jaswinder Saran
Sales Representative

205-7 Eastvale Dr., Markham, ON L3S 4N8
Highest Standard Agents...Highest Results!...

HOMELIFE HIGHER STANDARDS

REALTOR MLS MULTIPLE LISTING SERVICE

महात्मा गाँधी पुरस्कार कमल किशोर गोयनका को

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ में निदेशक डॉ. सुधाकर अदीब की प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार वर्ष 2009 का महात्मा गाँधी पुरस्कार कमल किशोर गोयनका को दिया गया। हिन्दी संस्थान उत्तरप्रदेश द्वारा दिए जाने वाले ये सम्मान पिछली सरकार ने रोक दिए गए थे, जिन्हें अब फिर से शुरु किया गया है। समारोह में मुख्यमंत्री ने भारत-भारती सम्मान (वर्ष 2009) से डॉ. महीप सिंह, भारत-भारती सम्मान (वर्ष 2011) से गोविन्द मिश्र, महात्मा गाँधी साहित्य सम्मान (वर्ष 2010) से श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा, महात्मा गाँधी साहित्य सम्मान (वर्ष 2011) से श्रीमती नासिरा शर्मा, हिन्दी गौरव सम्मान (वर्ष 2009) से डॉ. सरला शुक्ल, हिन्दी गौरव सम्मान (वर्ष 2010) से श्री के.पी. सक्सेना तथा हिन्दी गौरव सम्मान (वर्ष 2011) से श्रीकृष्ण तिवारी को सम्मानित किया। हालांकि डॉ. कैलाश बाजपेयी भारत-भारती सम्मान (वर्ष 2010) प्राप्त करने के लिए अस्वस्थता के कारण सम्मान समारोह में उपस्थित नहीं हो सके। भारत-भारती सम्मान से सम्मानित साहित्यकारों को माँ गंगा की प्रतिमा, ताम्र पत्र व 2 लाख 51 हजार रुपए की धनराशि प्रदान की। महात्मा गाँधी साहित्य सम्मान व हिन्दी गौरव सम्मान से सम्मानित साहित्यकारों को माँ गंगा की प्रतिमा, ताम्र पत्र व 2 लाख रुपए की धनराशि दी गई।

*

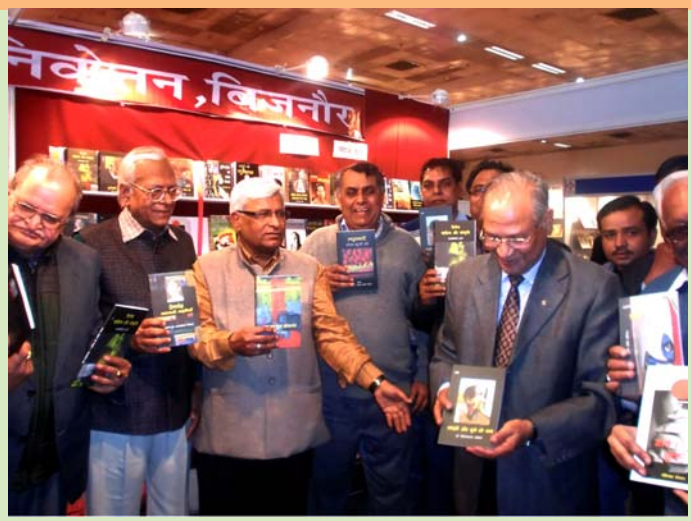

पुस्तक मेले में जन सुलभ साहित्य माला का लोकार्पण

दिल्ली के प्रगति मैदान में आयोजित विश्व पुस्तक मेले में हिन्दी साहित्य निकेतन द्वारा जन-जन तक साहित्य को पहुँचाने की अनूठी पहल के अंतर्गत 7 फ़रवरी को 'जनसुलभ साहित्य माला' की 12 पुस्तकों के पहले सेट का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर केंद्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक प्रो. केशरीलाल वर्मा, वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.कमलकिशोर गोयनका, श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', श्री नवलकिशोर शर्मा, डॉ. प्रेम जनमेजय, मधुदीप, डॉ. हरिवंश अनेजा, श्री मनोज अबोध, डॉ. बागेश्री चक्रधर, डॉ. मुकेश गर्ग, डॉ. अशोक कुमार, गीतिका गोयल, हिन्दी साहित्य निकतन के निदेशक डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ. मीना अग्रवाल सहित अनेक सहित्यकार बंधु उपस्थित थे। सभी ने इस प्रयास की सराहना करते हुए इसे पाठक के लिए 'फायदे का सौदा' कहा और इस योजना की सफलता की कामना की। डॉ. अग्रवाल ने कहा कि 12 पुस्तकों का यह सेट तो मात्र शुरुआत है, ऐसे कम-से-कम 10 सेट जल्दी ही प्रकाशित करने की योजना है। इस सेट में कहानी, कविता, व्यंग्य, सिनेमा आदि विधाओं को शामिल किया गया है।

*

अवनीश सिंह चौहान को सृजनात्मक साहित्य पुरस्कार

जयपुर के भट्टारकजी की नसियां स्थित इन्द्रलोक सभागार में पं. झाबरमल्ल शर्मा स्मृति व्याख्यान समारोह का भव्य आयोजन किया गया। जनरल वी के सिंह और गुलाब कोठारी के कर-कमलों से अवनीश सिंह चौहान को सम्मानित किया गया। 'सृजनात्मक साहित्य सम्मान-2013 के अंतर्गत श्री चौहान को 11000 रू. नकद, सम्मान पत्र और श्रीफल प्रदान किया गया।

*

प्रतिष्ठित वागीश्वरी पुरस्कार से पंकज सुबीर, वसंत सकरगाए तथा अखिलेश पुरस्कृत

सरकार को चाहिए कि पुरस्कार में केवल पुस्तकें भेंट की जाए चाहे वो पहलवान को ही क्यों न दी जाए, किताब पढ़ने से पहलवान कमज़ोर नहीं होगा किताब कभी एक्सपायर नहीं होती है और न ही यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। यह बात साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित देश के वरिष्ठ कवि श्री चन्द्रकांत देवताले ने भोपाल में मप्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा मायाराम सुरजन फाउण्डेशन द्वारा आयोजित वागीश्वरी पुरस्कार समारोह में कही। इस अवसर पर कथाकार पंकज सुबीर, लेखक चित्रकार अखिलेश तथा कवि वसंत सकरगाए को समारोह पूर्वक वागीश्वरी पुरस्कार प्रदान किया गया।

भोपाल स्थित राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण एवं शोध संस्थान के सभागार में दिनांक 30 मार्च 2013 को आयोजित गरिमामय कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए श्री चन्द्रकांत देवताले ने कहा कि रचनाकारों का सम्मान करना ज़रूरी है इससे उनका हौसला बढ़ता है साथ ही इस बात का भी पता चलता है कि समाज की निगाह उनके लेखन पर है। साथ ही रचनाकारों को भी ये समझना चाहिये कि पुरस्कार एवं सम्मान एक बड़ी चुनौती होती है अपने आप के लिये । कार्यक्रम के मुख्य अतिथि पूर्व पुलिस महानिदेशक आरपी मिश्रा ने वरिष्ठ पत्रकार मायाराम सुरजन फाउण्डेशन द्वारा हिन्दी साहित्य जगत के लिए किए जा रहे कार्यों की सराहना करते हुए कहा कि स्व. मायाराम जी के कार्यों को जनता तक पहुंचाना हम सभी का दायित्व बनता है अच्छी बातों को सदा समाज तक पहुँचना ही चाहिए। सुप्रसिद्ध कवि श्री प्रयाग शुक्ल ने कहा कि मायाराम सुरजन फाउण्डेशन का कार्य काफी सराहनीय है कला से जुड़े लोगों में संवाद और भी बढ़ना चाहिए भोपाल में जो वातावरण है वो देश में कहीं और दिखाई नहीं देता है। इससे पहले मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नव निर्वाचित अध्यक्ष पलाश सुरजन का पुष्प गुच्छ भेंट कर स्वागत किया गया । सम्मेलन के महामंत्री प्रो. विजय अग्रवाल ने कार्यकम की जानकारी प्रदान की। मायाराम सुरजन फाउण्डेशन के प्रबंध न्यासी ललित सुरजन ने मायाराम सुरजन फाउण्डेशन द्वारा किए जा रहे कार्यों के बारे में विस्तार से चर्चा की । कार्यक्रम में कथाकार पंकज सुबीर को उनके उपन्यास ये वो सहर तो नहीं हेतु, लेखक चित्रकार अखिलेश को उनकी पुस्तक दरसपोथी तथा युवा कवि वसंत सकरगाए को काव्य संग्रह निगहबानी में फूल के लिये वागीश्वरी पुरस्कार प्रदान किया गया। तीनों को पुरस्कार के रूप में शाल श्रीफल सम्मान पत्र तथा इक्यावन सौ रुपये की सम्मान राशि प्रदान की गई । इस अवसर पर अक्षर पर्व के स्व. मायाराम सुरजन पर केन्द्रित विशेषांक तथा मप्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा वागीश्वरी पुरस्कार पर विशेष रूप से प्रकाशित विवरणिका का विमोचन अतिथियों द्वारा किया गया। अक्षर पर्व की संपादक सर्वमित्रा सुरजन ने विमोचन कराते हुए अक्षर पर्व की जानकारी दी। कार्यक्रम का संचालन साहित्यकार श्री मुकेश वर्मा द्वारा किया गया, आभार वसुधा संपादक राजेन्द्र शर्मा ने व्यक्त किया। कार्यक्रम में मायाराम सुरजन फाउण्डेशन द्वारा बनाई गई वेव साइट का भी लोकापर्ण किया गया। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में साहित्यकार उपस्थित थे ।

समाचार संकलन चन्द्रकांत दासवानी

*

मुक्ति-द्वार के सामने का लोकार्पण

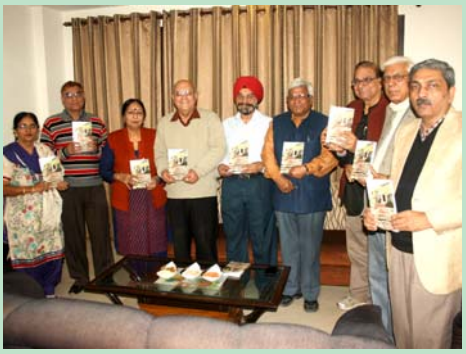

प्रताप सहगल के नए कविता संग्रह मुक्ति-द्वार के सामने का लोकार्पण कवि के निवास पर ही मित्रों की महफ़िल में सभी उपस्थित मित्रों द्वारा किया गया। इस अवसर पर इस संग्रह की कविताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए पवन माथुर ने कहा- ''अब तक प्रताप सहगल का काव्य-संसार एक गहरे कशमकश में फ़ंसे और क्रूर होते चले जा रहे भूमंडल, देश, समाज और राजतंत्र के प्रति बेबाक प्रतिक्रियाओं का रहा है। किन्तु इस संग्रह में आकर प्रताप का काव्य-स्वर एक नितांत नई करवट से तरोताज़ा कर जाता है। यह काव्य स्वर आसपास की ऐसी दुनिया से सिंचित है जो कवि की निजी होते हुए भी स्व का बड़ा विस्तार पाती है। 'मुक्ति-द्वार के सामने', 'पसोपेश में', 'कुछ समझा आपने', ऐसी ही तरोताज़ा करने वाली कविताएँ हैं। इस संग्रह का एक भाग कुछ प्रयोगात्मक कविताओं को भी लिए हुए है। एक ओर पंचतंत्र की कहानियों का पुनर्पाठ है तो दूसरी ओर अपने घर के कूलर में पनपते नवजीवन का स्वर कबूतरों की दुनिया के माध्यम से है। आपको इस संग्रह को पढ़ते हुए लगेगा कि प्रताप इन कविताओं के माध्यम से एक ऐसी विचार-सरणि देने के इच्छुक हैं जो अभी तक के जाने पहचाने रास्तों से कुछ अलग है और बंजर ज़मीन में नया बीज डालने के आह्वान का दुरमुट आपके हाथ में है। यह संग्रह मुक्ति-द्वार की कल्पना के बरक़्स जीवन के नए द्वार के सामने प्रस्तुत है''। प्रताप सहगल ने इस टिप्पणी के साथ कि वह अगोचर के अध्यात्म की अपेक्षा गोचर के अध्यात्म को महत्त्वपूर्ण मानते हैं अपनी कुछ वे कविताएँ सुनाईं जिनका आग्रह वहाँ मौजूद कवि मित्रों पवन माथुर, नरेन्द्र मोहन, दिविक रमेश, गुरचरण सिंह और प्रेम जनमेजय ने किया।

*

श्री हनुमान मंदिर में द्वितीय वार्षिक भव्य कवि सम्मेलन

पिछले वर्ष के हिन्दी कवि सम्मेलन की स्वर्णिम सफलता से प्रेरित स्वामी मोहन दास सेवा समिति, कनाडा, द्वारा श्री हनुमान मंदिर में पुन: एक भव्य हिन्दी कवि सम्मेलन आयोजित किया गया। मंच पर डॉ.बिक्रम लाम्बा (मुख्य अतिथि), श्री नवल बजाज (विशिष्ट अतिथि), श्री राकेश तिवारी(अध्यक्ष), डॉ. कैलाश भटनागर (विशेष अतिथि) तथा श्री राम लुभाया कालिया (आतिथेय) विराजमान थे। प्रो. देवेन्द्र मिश्र ने संचालन भार संभाला। कार्यक्रम मंदिर के पुरोहितों सर्व श्री मुकेश चौबै, मंगल शर्मा और पवन शर्मा द्वारा मंगलाचरण ,स्वस्तिवाचन एवं कविगण के अभिनंदन से प्रारंभ हुआ। पंडित मुकेश चौबे ने सुमधुर स्वर में सरस्वती तथा गणेश वंदना की तथा सभी उपस्थित लोगों का स्वागत करते हुए कविता की महत्ता पर प्रकाश डाला। हास्य, व्यंग्य, आध्यात्म, दर्शन, प्रेम, शक्ति एवं भक्ति के विविध पुष्पों से सुसज्जित कविता वाटिका की सुगंध तथा शोभा सराहनीय थी।सुश्री सुधा मिश्रा,राज कश्यप,सरोज भटनागर एवं सर्वश्री राकेश तिवारी, भगवत शरण,सरन घई,सुमन घई,हरजिन्दर सिंह,श्याम त्रिपाठी,भारतेन्दु श्रीवास्तव,गोपाल बघेल,शान्तिस्वरूप सूरी,संदीप त्यागी,कैलाश भट्नागर,हर भगवान शर्मा, देवेन्द्र मिश्र ने सहज,सरल ,सुरम्य ,भाव भीनी मौलिक रचनाओं की प्रस्तुति द्वारा उपस्थित श्रोताओं को आल्हादित किया। मंच पर सुशोभित विभूतियों ने अपने वक्तव्यों में कवि गणों की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुये ये कामना की कि अगले वर्ष के सम्मेलन में युवा वर्ग का और अधिक प्रतिनिधित्व एक सराहनीय प्रयास होगा। कवि सम्मेलन के दूसरे सत्र में श्री मोहन दास सेवा समिति ,कनाडा की प्रबंधक समिति के अध्यक्ष जीत शर्मा, उपाध्यक्षा सुनीता कालिया ,सचिव सुभाष शर्मा ,आयोजक सुमन कालिया तथा लक्ष्मी नारायण मंदिर के ट्रस्टी प्रेम शर्मा, प्रधान नवल गरोत्रा एवं ग्रे टाईगर्स सीनियर्स क्लब के अध्यक्ष राम गुप्ता ने कवि गण और मंच पर प्रतिष्ठित अतिथियों को स्नेह सुरभित पुष्पों और पारंपरिक परिधानों की भेंटों से सम्मानित किया। संध्या का समापन मुकेश चौबे की हृदयस्पर्शी गज़ल से हुआ।

*

हिन्दी चेतना परिवार की ओर से हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ

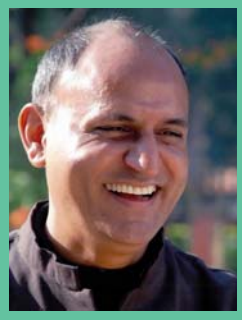

वागीश्वरी पुरस्कार

हिन्दी चेतना के सह संपादक पंकज सुबीर को उनके उपन्यास 'ये वो सहर तो नहीं' के लिए मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रतिष्ठित वागीश्वरी पुरस्कार प्रदान किया गया।

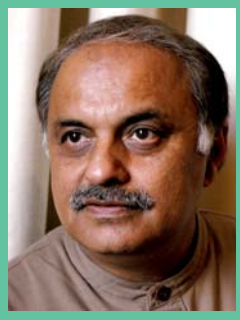

साहित्य सेवी सम्मान

हरियाणा साहित्य अकादमी का अगला विशेष साहित्य सेवी सम्मान ब्रिटेन के हिन्दी कहानीकार श्री तेजेन्द्र शर्मा को उनके हिन्दी साहित्य एवं भाषा के लिए उनकी सेवाओं के लिए प्रदान किया जाएगा।

व्यास सम्मान

2012 के व्यास सम्मान के लिए प्रख्यात लेखक डॉ. नरेन्द्र कोहली के उपन्यास न भूतो न भविष्यति को चुना गया है। 1975 से वह हिन्दी साहित्य को अपनी लेखनी की अविछिन्न धारा से समृद्ध करते आ रहे हैं, इसलिए समकालीन आधुनिक हिन्दी साहित्य की यह अवधि ''कोहली युग'' के नाम से भी जानी जाती है।

बबिता श्रीवास्तव

मम्मी जी की मिक्स सब्जी

बबिता श्रीवास्तव

बेटा जी! आज आपकी मम्मी ने बड़ी स्वादिष्ट सब्जी बनाई है, आप भी खाकर देखो मज़ा आ जाएगा।

जी पिताजी, बस मैं अभी हाथ-मुँह धोकर आती हूँ; जैसे ही मैं स्कूल से वापिस आई और घर में घुसी ही थी कि पिताजी ने खुशखबरी के माफ़िक ये ख़बर सुनाई। उनका चेहरा बता रहा था कि आज दोपहर के खाने में उन्हें बहुत आनंद आया है, वैसे भी मसालों की अच्छी सुगंध घर के बाहर से ही आ रही थी। मैंने खाकर देखा ,सब्जी सचमुच स्वादिष्ट बनी थी। खाते-खाते मैंने मम्मी जी से पूछा कि सब्जी किस चीज की है? उन्होंने फट से उत्तर दिया,''मिक्स सब्जी है''। पर क्या-क्या मिक्स किया है? इस बार मम्मी जी ने आँख तरेरते हुए मुझे देखा और कहा--बोला तो है, मिक्स सब्जी है। अरे गलत क्या पूछ रही है, बता दो कि सब्जी में क्या-क्या डाला है, क्या मिक्स किया है ? जैसे ही पिताजी ने मम्मी जी से ये प्रश्न किया, रोकते-रोकते भी मम्मी जी की हँसी छूट गई। उन्हें हँसता देख मुझे भी हँसी आ गई और धीरे-धीरे इस मिक्स सब्जी का रहस्य भी समझ में आने लगा।

दरअसल मम्मी जी ने फ्रिज में से सारी बासी व बचीखुची सब्जियों को ही मिक्स करके छौंक लगाया था। मैंने फ्रिज खोला, बची खुची सब्जियों के साथ कल का बचा खामन ढोकला भी गायब! मेरे कुछ कहने के पहले ही उन्होंने संकेत में बताया कि उसी सब्जी में ढोकला भी मिक्स कर दिया।

अब पिताजी का चेहरा देखने लायक था, हँस भी नहीं पा रहे थे और कुछ कह भी नहीं सके। हाँ इतना ज़रूर लगने लगा कि पिताजी को भयंकर गुस्सा आ रहा है।

इस बार मेरे सास-ससुर तीसरी बार अमेरिका हमारे पास आए। पहली बार पाँच साल पहले जब मेरी बेटी आस्था का जन्म हुआ था। अमेरिका तो उन्हें बहुत अच्छा लगा किन्तु एक बात यहाँ की उन्हें पसंद नहीं आई कि लोग बासी खाना क्यों खाते हैं? वो भी कई- कई दिनों का बासी। उनका स्वभाव ऐसा है कि उन्हें जगमगाते न्यूयार्क या गैम्बलिंग सिटी अटलांटिक या डिजनी लैंड जाने की कोई लालसा या आकांक्षा नहीं। सादा जीवन व उच्च विचार वाली परिपाटी निभाते हुए, जब वे दूसरी बार अमेरिका आए, तो आते ही उन्होंने मुझे एक बात स्पष्ट रूप से कही कि बेटा आप चाहे बिलकुल सादा खाना बनाओ या चाहे चोखा रोटी ही बना दो मेरे लिए, बस ताज़ा होना चाहिए। पहली बार वे अपनी नौकरी की वजह से केवल तीन हफ़्तों के लिये आए थे, शायद इसलिए कुछ कहने का मौका ही नहीं आया होगा। किन्तु उसके बाद से ही अमेरिका आने से पहले ही ताज़ा खाना खाने की शर्त रखते थे जिसे मैं सहर्ष पूरा करने को तत्पर थी, क्योंकि उनके आने मात्र से ही मेरे घर में छोटा सा भारत बस जाता था। बेटा -बेटी सभी का खूब मन लगता है उनके साथ, सो उनको बुलाने के लिए मैं कोई भी शर्त मानने को तैयार रहती।

परन्तु यहाँ आने के बाद बात पलट जाती। मम्मी जी बचा खाना बर्बाद करने के हक़ में नहीं थीं। वे चाहती थीं कि बचे खाने को ही मिला कर नया व्यंजन बना लिया जाए। सुबह मैं स्कूल पढ़ाने चली जाती और मेरे आने से पहले ही दोपहर का लंच तैयार होता। मम्मी जी जानती थीं कि कुछ भी हो, मैं ताज़ी ही सब्जी व दाल बनाऊँगी, सो मेरे आने से पहले ही वे खाना बना देती थीं।

वास्तव में पिताजी को पता नहीं चल पाता था हालाँकि मुझे गिल्टी फील होती थी पर सारा मोर्चा मम्मी जी सँभाल लेती थीं। वैसे भी शाम को तो मैं ताज़ा खाना बनाती थी, परन्तु रोज़-रोज़ खाना दोनों समय बनने के कारण तथा बच्चों वाले घर में कितना भी कम खाना बनाओ, बच ही जाता था और मम्मी जी के कारण वही खाना खप भी जाता था और पिताजी को हवा भी न लगती। उस दिन भी यदि मम्मी जी हँसी ना होती तो शायद पिताजी को पता भी न चल पाता कि बासी खाना ही ताज़ा रूप लिए हुए है।

ख़ैर ! थोड़ी अवाक् रहने के बाद पिताजी

मम्मी जी को इंगित करते हुए बोले--इन्होंने कसम खा रखी है कि जो चीज़ मुझे पसंद हो, ये उसे मानेंगी ही नहीं और जो नापसंद हो, उसे ज़रूर करेंगी।

''अरे आप लोग चाहे जैसा बासी पुराना खाना खाओ मैंने कहाँ मना किया पर मुझे बख्शो..... माना कि बड़ा आधुनिक फ्रिज है, खाना कई दिनों तक ख़राब नहीं होता पर मुझे नहीं खाना ऐसा खाना। मुझे कतई नहीं पसन्द, लेकिन तुम्हारी मम्मी को ये बात कैसे पसंद आएगी?'' पिताजी सचमुच गुस्से में थे फिर भी मम्मी जी मुँह दबा कर हँसे जा रही थीं। पिताजी का बोलना अनवरत चालू ही था। कल से मैं खुद अपने लिए खाना बना लिया करूँगा इतनी शक्ति है मेरे हाथ पैरों में। फिर मुझे देखते हुए बोले- ''मेरा तुम्हारी मम्मी पर से विश्वास उठ गया है। यदि वो ताज़ा खाना बनाएंगी तो भी मैं नहीं खाऊंगा।''

''पिताजी प्लीज़ आप नाराज़ मत होइए, मैं बनाऊंगी दोपहर का खाना स्कूल से आकर।'' मेरी बात अनसुनी करते हुए मम्मी पिता जी से बोलीं--''ठीक है बना लेना अपना खाना।''

पिताजी क्रोध में ही ऊपर अपने कमरे में चले गए।

शाम को दफ्तर से लौटने के बाद यह बात मैंने उनके बेटे को बताई। उन्होंने कहा- ''अम्मा प्लीज़! अब पिताजी के लिए ताज़ा खाना ही बनेगा। स्वास्थ्य ही सब कुछ है। आप लोग स्वस्थ रहिए, रोज़ ताज़ा खाना ही बनेगा।''

''ठीक है बाबा, बासी मिक्स खाना बंद खुश!'' मम्मी जी ने अपने बेटे को डांट कर ही ये बात मानी।

ख़ैर, तीन दिन की मेरी छुट्टी थी। स्कूल बंद था तो दोनों समय ताज़ा खाना बना किन्तु चौथे ही दिन फिर वही ढाक के तीन पात। फ्रिज में से बासी खाना गायब। एक दिन पिताजी को शक हुआ, मैं स्कूल में थी; जैसे ही मम्मी जी ने सब्जी बनाने के लिए कढ़ाही चढ़ाई, पिताजी ऊपर अपने कमरे से नीचे रसोई में आ गए, बोले-''कढ़ाही तो चढ़ी है पर सब्जी काटकर कहाँ रखी है?'' इस बार मम्मी जी रगें हाथों पकड़ी गईं। ''अरे बस मैं आलू काटने ही जा रही थी मम्मी जी ने सफाई पेश की। पिताजी ने भी दुनिया देखी है। वे बस मम्मी जी को घूरते रहे और ताज़ी सब्जी वहीं खड़े होकर बनवाई। फिर वे नहाने चले गए इस बीच मैं स्कूल से आ गई, पिताजी खाना खा रहे थे और मम्मी जी की कहानी बता रहे थे। मैंने फ्रिज खोला, कल मैंने सैंडविच बनाया था, वही बचा था सोचा मैं उसे ही खा लूँ, पर ये क्या? सैंडविच का ब्रेड तो है पर बीच का मसाला गायब। मम्मी जी ने विजयी मुद्रा में बताया कि जब पिताजी नहाने गए, उन्होंने सैंडविच का मसाला भी उसी सब्जी में मिला दिया और पिताजी को हवा भी न लगी। लेकिन मेरी बेटी आस्था ने इस बार भेद खोल दिया, उसे सैंडविच खाना था। पिताजी समझ गए कि सारी कारस्तानी माताजी की है। पिचके व गले हुए सैंडविच के खोल पिताजी को सच्चाई बता रहे थे।

फिलहाल पिताजी ने भी हार नहीं मानी। उनकी पूरी कोशिश होती है कि मम्मी जी के मिक्स व्यंजन बनाने की कोशिश नाकामयाब करना और मम्मी जी फिर भी बाज़ी जीत जाती हैं। यदि मैं कुछ कहूँ तो उससे पहले ही मुझे डपट देती हैं कि खबरदार! जो अपना मुँह खोला। ख़ैर नहीं तुम्हारी। अब समझ में आ रहा है कि क्यों मम्मी जी कभी-कभी सुबह पिताजी के साथ टहलने नहीं जातीं या खाना तभी क्यों तैयार होता है; जब पिताजी नहाने जाते हैं। मुझे याद आ रहा है, हिन्दुस्तान में, ससुराल के घर में; जब कभी मेरी देवरानी बचे हुए चावलों की बिरियानी बनाती थी तो वह मसालों के अनुपात के अनुसार चावल मिलाती थी, बेचारी बढ़िया सी बिरियानी बनाकर रसोई से निकलती कि मम्मी जी जाकर बाकी बचा सादा पका चावल भी उसी में मिला देती। कारण बताती ''खपाने'' के लिए, आखिर बचा चावल क्यों बर्बाद हो।

गर्मी की छुट्टी होने के कारण बच्चे घर पर रहने लगे हैं सो पोते गोलू की ड्यूटी पिताजी ने लगाई कि यदि उसकी अम्मा कोई भी दो तरह का खाना मिक्स करें तो फ़ौरन उन्हें सूचित किया जाए। पोती आस्था भी इसी काम में लग गई। अब तो पिताजी किसी पार्टी वगैरह में मिक्स सब्जी खाने से परहेज करने लगे हैं, सब्जी को देख उन्हें मम्मी का कारनामा याद आ जाता है। बेचारी मिक्स सब्जी शक़ के घेरे में आ गई है। मैं अपने बारे में क्या कहूँ? त्रिशंकु के माफिक हूँ, पिताजी को सच बता नहीं सकती, मम्मी जी को रोक नहीं सकती....फ़िलहाल इसी कशमकश में बस जी रही हूँ और खुश भी हूँ क्योंकि बना बनाया खाना भी तो मुझे मिल रहा है, जो कि मेरा सबसे बड़ा सुख है.....।

*

mr_golu@yahoo.com

Shil K. Sanwalka, Q.C.
Barrister, Solicitor & Notary
18 WYNFORD DRIVE,
SUITE #602,
DON MILLS, ONT. M3C 3S2
Telephone: (416) 449-7755
Fax: (416) 449-6969
sksanwalka@rogers.com

विलोम चित्र काव्यशाला

चित्रकार : अरविंद नारले
कविः सुरेन्द्र पाठक

चित्र को उल्टा करके देखें

इस चित्र में देखें आप, खड़ा हुआ है एक आदमी,
खाना खाने बैठा था तो, चली गयी टेबल की रोशनी,
सर पे सफेद ऊन की टोपी, और पहना है कोट सफेद
इस समय बिजली जाने से, इसको हुआ बहुत ही खेद
कर रहा है बिजली की मरम्मत, बल्ब का शेड पकड़कर
बाएँ हाथ से खोला बल्ब, धीरे-धीरे संभल -संभल कर
बल्ब तो खराब नहीं है, क्या कारण हो सकता है
मेरे को तो पूरा फिक्सचर खराब हुआ लगता है
टेबल के ऊपर पड़ा हुआ है, चीनी मिट्टी का प्याला
उसमें रखा है एक अंडा, जो खाने को इसने अभी उबाला
खाने लगा तो गयी रोशनी, बिगड़ गया सारा स्वाद
पहले इसको ठीक करूँगा, खाना खाऊँगा इसके बाद
टेबल के बीच रखी हुयी है, चीनी मिट्टी की मुर्गी सजाकर
उसी के मुँह में आये पानी, जो बैठे टेबल पर आकर
*

चित्र उलटा करके देखो, रात गयी तो हुआ सबेरा
वही चित्र है, वही जगह है, पर बदल गया चित्र में चेहरा,
टेबल पर अब बैठ गया है, उस आदमी का लडका आकर
चिकन- सूप पी रहा है, खूब मजे से ध्यान लगा कर
दाहिने हाथ में कप संभाला, बाएं से देकर उसे सहारा
ऐसा लगता दो-चार घूँट में, पी जाएगा ये कप सारा
सर पर बेस-बाल की टोपी, और मोटा गाउन है पहना
पियो चिकन-सूप प्रतिदिन यदि सर्दी से बचकर रहना
छत से लटकने वाला लैंम्प, उसके बाप ने बदल दिया
सोने के पहले उसने, कितना अच्छा काम किया
उसी चित्र की सारी चीज़ें, उलटा किया तो गयी बदल
चित्रकार की जादूगीरी है, चित्र से नया चित्र आया निकल
अंडे वाली प्लेट बन गयी, छत पे बिजली का अब फिक्सचर
जो फिक्सचर था पहले वाला, बना सूप का कप इधर
पिता का हाथ लैंम्प के नीचे, बन गया बच्चे का चेहरा
पहले रात थी, उलटा किया तो , हो गया अब सवेरा
चीनी - मिट्टी की मुर्गी बन गयी , बच्चे सर पर टोपी
बाप का चेहरा और एक हाथ, बनी आकृति बच्चे के हाथों की।

अरविंद नारले

सुरेन्द्र पाठक

चित्र काव्यशाला

हिन्दी चेतना के जनवरी-मार्च 2013 अंक की चित्र काव्यशाला में प्रकाशित चित्र पर प्राप्त हुईं रचनाएँ ।

चित्रकार : अरविंद नारले

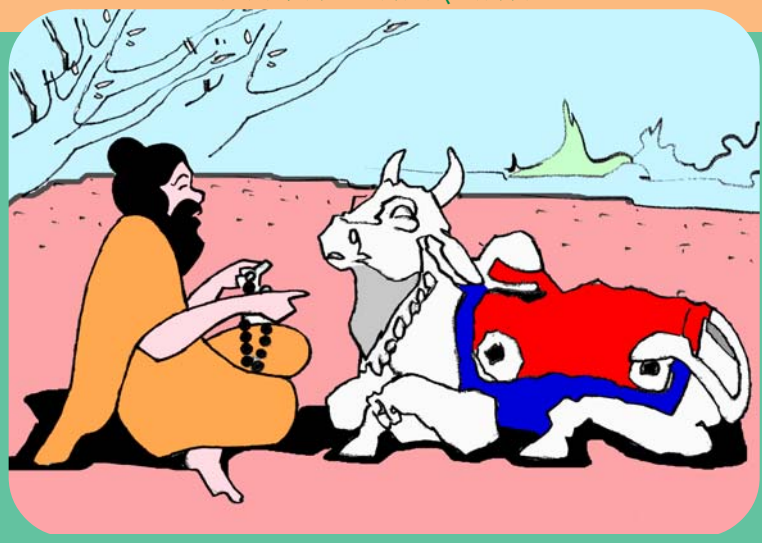

तुलना

क्या तुलना कुछ हममें तुममें, ए जोगी जी बतलाओ न ,
हम जो सेर हैं आलस में, तुम सवा सेर हो जाओ न॥
हम बैठ जुगाली किया करें, तुम हाथ फिरा मनका-मनका,
हम पहने स्वर्ण के हार है आज, तुम जीवन हार दिए हो क्या?
क्यूँ पस्त पड़े अकर्मण्य हुए, फिर कर्म के मार्ग पे जाओ न,
मेरे कर्म का मैं निर्वाह करूँ, तुम अपना फ़र्ज़ निभाओ न॥
ये जन्म बड़ा ही मुश्किल है, इस जन्म को यूं ही गंवाओ ना,
उठो छोड़-छाड़ इस जोग को अब, कर्मयोगी बन जाओ ना॥
मैं शिव हूँ मैं ही सत्य भी हूँ, हूँकारता हूँ जग जाओ न,
जो बात है गीता में मुखरित, उस स्वर को तुम गुन्जाओ न॥

ममता शर्मा (भारत)

*

धरके मुझसा साधू वेश

बैल देवता सुनिए तो ज़रा मैं बात यह आज बताऊँ
बस आपसे ही कहता हूँ , किसी और से कह न पाऊँ
भगवा चोला पहनके चाहे माला हाथ में लेकर फेरी
मन का चोला बदला नाहीं, छोड़ सका न तेरी-मेरी
आप जो आए पास मेरे यह नैया पार लगाने को
ऐसा कोई जीवन-मंत्र नहीं पास मेरे समझाने को
कर्मयोग और ज्ञानयोग को मैं न कभी अपना पाया
सारा जीवन रहा भटकता न भक्त योगी ही बन पाया
देखो तो कितने फिरते हैं धरके मुझसा साधु वेश
छोड़ सके न मोह-माया और नाही छूटा ईर्ष्या द्वेष
हम सबसे भले तो आप हैं करते न कोई पाप हैं
करते हो निष्काम कर्म, कहाँ इससे बड़ा कोई जाप है
प्रभु-कृपा आप आये हो जीवन मूल्य सिखलाने को
अंतर का ढोंगी भी आज व्याकुल है जल जाने को
प्रण है मनका छोड़ कर के और मन को फेरूंगा
बची हुई साँसों से बस अब रामनाम ही उचेरुंगा

अनीता शर्मा (शंघाई, चीन)

*

हम रुके नहीं

ज़िन्दगी को रुकने न दो
चलते ही रहने दो
मन में उमंगें है तो ज़िन्दगी है
ठहर गए, रुक गए, तो मौत है...
मस्तिष्क में जागते रहना ज़िन्दगी है
सपनों में जागो उसे खोने न दो
साँसे है तो जीवन है,रुकना मौत की निशानी है
अपने होने का अहसास जता दो....
ईश्वर भक्ति में लीन हो
सन्नाटे को चीर दो
उस परम ब्रह्म में समाहित हो
अपने होने का अहसास 'उन्हें' भी बता दो.....

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

*

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

आख़िरी पन्ना

वसंत, फाल्गुन और आम्र मंजरियों का आपस में गहरा रिश्ता है । आम्र मंजरियों की महक दूर दूर तक फैल कर बता देती है कि ऋतुराज वसंत आ चुका है और उसके साथ ही आ रहा है फाल्गुन । रंगों और गंधों का पर्व, प्रकृति का पर्व है होली ।

महिलाएँ स्वयं अपना सम्मान करना सीखें.....

माइकल और जोडी फास्टर पिछले दस वर्षों से निरन्तर अपनी कम्पनी के कार्यों से भारत आते-जाते रहे हैं। वे भारतीय संस्कृति, कला, वेश-भूषा और भोजन के प्रशंसक ही नहीं बल्कि भारतीयों की आत्मीयता से भी बेहद प्रभावित हैं। भारत से उन्हें लगाव है और वे उस देश के लिए कुछ करना भी चाहते थे ; इसीलिए वे वहाँ की कार्यप्रणाली को समझने की कोशिश करते रहे। कल रात्रि भोज में उन्होंने अत्यंत दु:ख के साथ बताया कि वे वहाँ से अपनी कंपनी हटा कर चीन में ले जा रहे हैं। उनके भीतर गहरी पीड़ा है, वे जो कुछ वहाँ करना चाहते थे, कर नहीं पाएँगे। इससे भी ज़्यादा दु:ख उन्हें वहाँ की सरकार और जनता की लापरवाही से हैं; जो भले-बुरे का अंतर नहीं समझ पा रही है। बस लोगों में एक होड़ लगी हुई है, एक-दूसरे को पछाड़ने की। दस वर्षों में उन्होंने जिस तेज़ी से देश को भौतिक प्रगति करते देखा, उसी रफ़्तार से नैतिक पतन का घिनौना रूप भी देखा है। पीड़ा से भीगी उनकी बातें हृदय को बींध गईं। उनकी महिला कर्मचारी के साथ वहाँ दुर्व्यवहार किया गया और सिस्टम ने उनका साथ देने की बजाय, उन्हें ही तंग किया। कम्पनी के कार्यों के लिए वे वहाँ की हर माँग पूरी कर रहे थे; यहाँ तक कि रिश्वत भी दी उन्होंने। अब कार्यप्रणाली की माँगें बेइन्तिहा बढ़ गई थीं और वे उनके साथ चल नहीं पा रहे थे। उनकी बातों से लगा कि सत्ताधारियों से उन्होंने बात करनी चाही, वहाँ भी बात बनी नहीं, उनके मुँह पहले की अपेक्षा अधिक खुल चुके थे। जानती हूँ कि कुछ कारण और भी रहे होंगे जो उन्होंने चीन में कम्पनी ले जाने का निर्णय लिया और वे कारण सार्वजानिक करने वाले नहीं होंगे, अन्यथा ज़रूर बताते। वैसे अमेरिकन कोई बात छिपाते नहीं। भोज में बैठे हर संवेदनशील व्यक्ति ने भारत छोड़ने के उनके दर्द को महसूस किया।

अक्सर सोचा करती थी, देश से बाहर रह रहे भारतीयों के पास दो देशों का बेहतरीन है। इस पक्ष की ओर कभी ध्यान नहीं गया कि दोनों देशों की विसंगतियाँ भी तो झेलनी पड़ती हैं। मेरी मातृ-भूमि को क्या हो गया है? जो अपनी बेटियों की रक्षा नहीं कर पा रही। आए दिन देशी-विदेशी महिलाओं से बलात्कार के समाचारों ने भारत के मनीषियों, बुद्धिजीवियों, मनोविशेषज्ञों, मनोवैज्ञानकों को सचेत क्यों नहीं किया? वे सोचने पर मजबूर क्यों नहीं हुए? इस ओर ठोस कदम क्यों नहीं उठाए जा रहे? बलात्कार तो इस देश में भी होते हैं, पर बलात्कारियों को सख्त से सख्त सज़ा मिलती है। यहाँ समाज अगर किसी परिवर्तन के लिए ठान लेता है और अगर रैलियाँ करता है तो उस परिवर्तन को लाए बिना हटता नहीं। भारत की जनता अपनी ताकत को क्यों नहीं पहचानती?

मित्रो ! बलात्कार करना एक तरह की मानसिक विकृति होती है जो बचपन में हुए हादसों या माहौल से पनपती है। मंदिरों में देवी- पूजन करना भर ही क्या नारी का सम्मान रह गया है.....देश की बेटियाँ सम्मान योग्य नहीं हैं? यह उद्वेलित करने वाला विषय किसी को कचोटता नहीं? मानती हूँ बहुत सी संस्थाएँ इस ओर प्रयासरत हैं। अगर कुछ परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा, तो कहीं कोशिशों में कमी है। सबसे पहले घरों और सार्वजनिक स्थलों पर नारी का सम्मान ज़ोर-शोर से शुरू करें, सिर्फ़ कहें नहीं। अगर घर में ही महिला शोषण का शिकार होगी तो कोई कानून उसकी रक्षा नहीं कर सकता। बच्चे वही देखेंगे, जो आप दिखाएँगे। बड़े होकर वे वही कुण्ठाएँ समाज को लौटाएँगे, जो उनको घर के परिवेश से मिली हैं। महिलाएँ स्वयं अपना सम्मान करना सीखें, तभी दूसरे भी करेंगे। बस आत्मविश्वास और आत्मसम्मान के साथ कदम बढ़ाएँ, मंजिल दूर नहीं रहेगी। अन्यथा स्त्री सशक्तीकरण, स्त्री विमर्श, नारी आन्दोलन और नारी मोर्चा सिर्फ खोखले नारे भर रह जाएँगे.....।

आपकी मित्र

सुधा ओम ढींगरा